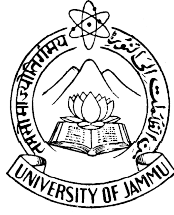


दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
University of Jammu, Jammu



पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम. ए. हिन्दी

M.A. (HINDI)

SESSION : 2020 ONWARDS

पाठ्यक्रम संख्या 301
COURSE CODE : HIN-301

आलेख संख्या - 1 से 9
LESSON NO. 1 - 9

सत्र-तृतीय
SEMESTER-III

(भाषा शास्त्र)

Co-ordinator :

Dr. Anju Thappa

DDE, University of Jammu.

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ शिक्षा निदेशालय,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू -180006 के पास सुरक्षित है।

<http://www.distanceeducationju.in>

*Printed and published on behalf of the Directorate of Distance Education, University of
Jammu, Jammu by the Director, DDE, University of Jammu, Jammu*

M.A. HINDI

- ***COURSE CONTRIBUTOR :***
Dr. ASHOK KUMAR **Lessons No. 1 – 9**
Associate Professor, Department of Hindi
University of Jammu, Jammu.
- ***PROOF READING :***
Dr. POOJA SHARMA
Lecturer in Hindi, DDE,
University of Jammu, Jammu.

© Directorate of Distance Education, University of Jammu, 2020.

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, University of Jammu.
- The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

• *Print by : Durga Printers, Ambphalla, Jammu / 20 /*

विषय सूची

आलेख सं०	आलेख	पृष्ठ संख्या
1.	भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण	2
2.	भाषा विज्ञान का नामकरण, परिभाषा और क्षेत्र	7
3.	समाज भाषाविज्ञान का परिचय	12
4.	स्वानिकी (ध्वनि-विज्ञान)	18
5.	स्वर – परिभाषा तथा वर्गीकरण के आधार	26
6.	स्वानिमी	38
7.	स्वनिम विश्लेषण पद्धति	43
8.	मर्ष विज्ञान	45
9.	व्याकरणिक कोटियां	48

भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

‘भाषा’ शब्द का अर्थ है—‘बोलना’ या ‘कहना’। अर्थात् ‘जिसे बोला जाए वह भाषा है।’ प्लेटो के अनुसार विचार और भाषा में थोड़ा ही अन्तर है। ‘विचार आत्मा की मूक बातचीत है, जब यही बातचीत ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा कहते हैं।’ स्वीट की परिभाषा भी इसी प्रकार की है—‘ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा—विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।’ अधिकांश आधुनिक भाषा-शास्त्रियों ने भाषा की परिभाषा लगभग एक-सी दी है। बी ब्लाक तथा जी.एल. ट्रैगर के अनुसार— ‘भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है।’

ब्लाक तथा ट्रैगर की उपर्युक्त परिभाषा में चार बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है :

1. प्रत्येक भाषा में एक व्यवस्था होती है जिसे उसके बोलने वाले भली-भांति समझते हैं। यह व्यवस्था ध्वनि, शब्द रूप, वाक्य सभी स्तरों पर होती है। उदाहरण के लिए, हिन्दी में एक ही ध्वनि या ध्वनि-समूह की अनन्त आवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती और ज, ड, ढ, वर्ण शब्द के प्रारम्भ में नहीं आते। वाक्य स्तर पर हिन्दी में कर्ता+कर्म+क्रिया का क्रम होता है। कोई प्रत्यय सभी शब्दों के साथ जुड़ने के लिए स्वतंत्र नहीं होता जैसे ‘ता’ प्रत्यय ‘सुन्दर’ के साथ जोड़ कर ‘सुन्दरता’ शब्द बनाया जा सकता है, पर सफेद के साथ जोड़कर ‘सफेदता’ नहीं बनाया जा सकता।
2. वाक्प्रतीकों का यह तात्पर्य है कि उच्चारण मुँह से हुआ हो और उसका कुछ अर्थ हो। ‘पेड़’, ‘पक्षी’, ‘धूप’, ‘हँसना’ शब्दों का अगर हम उच्चारण करेंगे तो ये वाक्प्रतीक माने जाएँगे क्योंकि उनका अर्थ भी है।
3. वाक्प्रतीकों के यादृच्छिक होने से आशय यह है कि ध्वनि या शब्द का जो अर्थ है वह यों ही बिना किसी तर्क, नियम या कारण आदि के बिना मान लिया गया है। जिन भावों, वस्तुओं के लिए हमने जो शब्द चुने हैं, उनसे उनका आंतरिक संबंध नहीं है। ‘पुस्तक’ को हम ‘पुस्तक’ इसलिए कहते हैं कि परम्परागत रूप से उसे ‘पुस्तक’ कहा जा रहा है। यदि वाक्प्रतीक यादृच्छिक न हो कर अनिवार्य होते तो संसार में एक ही भाषा होती।
4. भाषा के द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए भाषा के अतिरिक्त अन्य साधन भी हैं, जैसे हाथ से संकेत करके किसी को बुलाना, विदाई के समय हाथ हिलाना आदि। किन्तु संकेतों से सभी प्रकार के विचारों का आदान-प्रदान संभव नहीं है।

यह कार्य भाषा द्वारा ही हो सकता है। सभी मानव एक ही भाषा द्वारा अपने विचारों का अदान-प्रदान नहीं कर सकते। एक समूह विशेष की अपनी भाषा होती है, जिसका प्रयोग उस समूह के सदस्य करते हैं।

भाषा के अभिलक्षण

अभिलक्षण से आशय है, किसी पदार्थ की वह विशेषता जिसके द्वारा वह पहचाना जाए। किसी भी वस्तु के अभिलक्षण ही उस वस्तु को अन्य वस्तुओं से अलगाते हैं। मानव-भाषा के अभिलक्षण उसे अन्य सभी प्राणियों की भाषा से अलग करते हैं। मानव की भाषा में निम्नलिखित अभिलक्षण मिलते हैं :-

1. **सृजनात्मकता या उत्पादन क्षमता-** भाषा में यह सामर्थ्य है कि सीमित शब्दों के आधार पर ऐसे वाक्यों की रचना की जा सकती है जो उससे पहले उसी रूप में प्रयोग में नहीं लाए गए। जिन्हें वक्ता ने पहले न कहा हो या श्रोता ने पहले न सुना हो। ऐसा होते हुए भी अदान-प्रदान में कोई कठिनाई नहीं होती। यह सृजनात्मकता श्रोता और वक्ता दोनों की भाषिक क्षमता में होती है।
2. **यादृच्छिकता-** भाषा में किसी शब्द का अर्थ के साथ निश्चित संबंध नहीं होता। सभी शब्दों के अर्थ स्वेच्छा से रखे गए हैं। यादृच्छिकता अर्थ के अतिरिक्त व्याकरण के स्तर पर भी पाई जाती है। जैसे कर्ता कारक के साथ हिन्दी में 'ने' का प्रयोग किया जाता है- राम ने छड़ी ली। अंग्रेजी में कर्ता कारक के साथ कारक चिन्ह का प्रयोग नहीं किया जाता है- (Ram took a Stick) हिन्दी के वाक्यों में कर्ता+कर्म+क्रिया का क्रम होता है जबकि अंग्रेजी में कर्ता+क्रिया+कर्म का क्रम होता है। जैसे हिन्दी में राम ने साँप को मारा। अंग्रेजी में Ram killed a snake.
3. **द्वैतता-** भाषा में दो तत्व अवश्य होते हैं। एक को स्वनिम कहा जाता है, दूसरे को मर्षिम। स्वनिम भाषा की एक ऐसी इकाई है, जो मिलती-जुलती ध्वनियों या ध्वनि गुणों का प्रतिनिधित्व करती है। स्वनिम का संबंध किसी भाषा-विशेष से होता है। लघुतम अर्थयुक्त इकाई को मर्षिम कहा जाता है। इसका संबंध भाषा के रूप-पक्ष से भी है और अर्थ पक्ष से भी। भाषा की इस द्वैतता को अभिरचना की द्वैतता भी कहा जाता है क्योंकि भाषा स्वनिम और मर्षिम के स्तर पर पाई जाने वाली अभिरचना (Pattern) का योग है।
4. **श्रोता और वक्ता में परस्पर परिवर्तनीयता-** भाषा का उपयोग करते समय वक्ता और श्रोता की भूमिकाएँ बदलती रहती हैं। बातचीत में वक्ता अपनी बात रखता है श्रोता सुनता है। जब श्रोता अपनी बात रखता है, उस समय वह वक्ता की भूमिका ग्रहण करता है और वक्ता श्रोता की।
5. **परिवर्तनशीलता-** मानव की भाषा परिवर्तित होती रहती है। यह परिवर्तन शब्द और अर्थ दोनों स्तरों पर होता है। संस्कृत-काल का 'कर्म' शब्द प्राकृत-काल में परिवर्तित हो कर 'कम्म' हो गया तो आधुनिक काल में 'काम'। 'प्रवीण' शब्द का मूल अर्थ था 'वीणा बजाने में चतुर', लेकिन अब इस शब्द का अर्थ

केवल 'चतुर' है। मानवेतर जीवों की भाषा में परिवर्तन नहीं होता।

6. **अंतरणता (Displacement)**— मानव की भाषा कालांतरण कर सकती है। भूत, वर्तमान और भविष्य के संबंध में कुछ कहने की सामर्थ्य मानव भाषा में है। मानव-भाषा में अमूर्त को भी अभिव्यक्त किया जा सकता है, जैसे न्याय, ईश्वर, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य आदि का बोध कराया जा सकता है। मानव की भाषा में अभावात्मक को भी अभिव्यक्त किया जा सकता है, जैसे आकाश-कुसुम, व्योमपुरी, वन्हया-पुत्र आदि।
7. **विविक्तता (Discreteness)**— मानव भाषा कई इकाइयों में विभाज्य है। उदाहरण के लिए वाक्य एक या एक से अधिक 'शब्दों' से बनता है, 'शब्द' एक से अधिक 'ध्वनियों' से। ऐसी विभाज्यता अन्य जीवों की भाषा में नहीं मिलती।
8. **अनुकरण ग्राह्यता**—मानव की भाषा आनुवंशिक (Hereditary) नहीं होती, जब कि जीव-जन्तुओं की भाषा अनुवंशिक होती है। मानव भाषा को समाज-विशेष से अनुकरण द्वारा सीखता है। अनुकरण द्वारा व्यक्ति एक से अधिक भाषाएँ भी सीख सकता है।
9. **असहजवृत्तिकता (Non-instinctivity)**— मानवेतर प्राणी अपनी सहजवृत्तियों-भूख, प्यास, भय, कामेच्छा आदि-की अभिव्यक्ति के लिए मुँह से कुछ ध्वनियाँ निकालते हैं जिन्हें उस अर्थ में भाषा नहीं कहा जा सकता, जिस अर्थ में मानव की भाषा को कहा जा सकता है। मानव की भाषा असहजवृत्तिक होती है।
10. **मौखिकता-श्रव्यता**— मानव की भाषा मौखिक-श्रव्य है, क्योंकि यह मुँह से बोली जाती है और कान से सुनी जाती है।
11. **भाषा में विशेषीकरण (Specialization)**— प्रत्येक मानवीय भाषा की अपनी एक विशेष पद्धति है, जिसके द्वारा अपने ढाँचे और अर्थ में सीमित रहते हुए वह भाव-संप्रेषण का कार्य सरलता से करती है। अपने बोध्य अर्थ या क्रिया से इसका साक्षात् संबंध भौतिक नहीं के बराबर होता है।

भाषा व्यवस्था और भाषा-व्यवहार

आधुनिक भाषा-विज्ञान के जनक सस्यूर ने भाषा-अध्ययन के दो आयामों की चर्चा की-भाषा व्यवस्था (Long) और भाषा-व्यवहार (Parole)। उनका मानना है कि भाषा सामाजिक वस्तु है। सामाजिक होने के कारण उसका एक पक्ष संस्थागत है, जिसे उन्होंने 'भाषा-व्यवस्था' की संकल्पना द्वारा अभिव्यक्त किया। भाषा-व्यवस्था सामाजिक संस्थान की तरह एक सामाजिक व्यवस्था है। भाषा व्यक्ति की निजी इच्छा या प्रतीकों के अपने माध्यम (उच्चारण या लेखन) से नियंत्रित नहीं होती। वह व्यक्ति से जुड़ी रहकर भी व्यक्ति की अपनी सीमा से मुक्त होती है, इसी कारण भाषा अपनी प्रकृति में समरूपी (Homogeneous) होती है। भाषा व्यवस्था अमूर्त और रूपपरक है।

सस्यूर ने भाषा-व्यवस्था को मूल्यपरक माना और इसी कारण उसे शुद्ध 'रूप' के संदर्भ में देखा। उनका

कहना है कि भाषा के शुद्ध रूप में केवल 'मूल्य' होते हैं। इस तथ्य को उन्होंने शतरंज के खेल द्वारा समझाया। शतरंज में प्रत्येक मोहरे का एक 'मूल्य' होता है, जैसे 'प्यादा' एक घर चलता है और दूसरे मोहरे को तिरछा मारता है। 'घोड़ा' ढाई घर चलते समय किसी दूसरे मोहरे को फांद भी सकता है, आदि। मोहरे आकार में छोटे-बड़े हो सकते हैं, उनका निर्माण लकड़ी, प्लास्टिक, धातु आदि से किया जा सकता है। रंग-रूप, आकार या मोहरे के निर्माण के लिए उपयोग की गई सामग्री के आधार पर एक मोहरे को दूसरे मोहरे से अलग नहीं किया जाता। एक मोहरा दूसरे मोहरे से 'मूल्य' के आधार पर अलग है। यदि एक मोहरा खो जाए तो उसके स्थान पर अलग दिखाई देने वाली किसी अन्य वस्तु को उस मोहरे का 'मूल्य' देकर काम चला लेते हैं। जिस प्रकार शतरंज का खेल एक व्यवस्था है, उसी प्रकार भाषा की किसी ध्वनि की सार्थकता उसके मूल्य में होती है, जिसे भाषा की अपनी व्यवस्था उसे प्रदान करती है।

अमरीकी भाषा वैज्ञानिक चॉमस्की ने भाषा-व्यवस्था (Long) के समानांतर जो संकल्पना प्रस्तुत की उसे आज 'भाषिक क्षमता' (Competence) के नाम से जाना जाता है। 'भाषिक क्षमता' व्यक्ति के चेतन एवं अवचेतन में स्थित वह भाषा-ज्ञान है, जिसके सहारे वह भाषा बोलता और समझता है। किसी भाषा की स्वनिर्कृत आकृति तथा अर्थ को निर्धारित करने वाली व्यवस्था को आत्मसात करना ही 'भाषायी क्षमता' है।

सस्यूर का यह कहना भी है कि भाषा अपनी प्रकृति में सतत् परिवर्तनशील है। भाषा की परिवर्तनशीलता को उन्होंने 'भाषा-व्यवहार' की संकल्पना द्वारा परिभाषित किया। जिस प्रकार मानव-संबंधों के अनेक रूप होते हैं और मानव की व्यक्तिगत आवश्यकताओं में विविधता होती है, उसी प्रकार भाषा-व्यवहार 'विषमरूपी' (Heterogeneous) होता है। वैयक्तिक संबंधों से जुड़े होने के कारण वह भाषा का व्यक्ति-रूप है। जो हम बोलते या सुनते हैं वह 'भाषा व्यवहार' है। 'भाषा-व्यवहार' 'भाषा-व्यवस्था' का अभिव्यक्त रूप है। अलग-अलग संदर्भों और भूमिकाओं में व्यक्ति की भाषा में परिवर्तन आता रहता है। उदाहरण के रूप में अगर हमारे सामने ऐसा व्यक्ति है जो हमारे लिए सम्माननीय है या जिसका सामाजिक स्तर हमसे ऊँचा है तो उसे बैठने के लिए हम कहेंगे- 'आइए बैठिए'। अगर उसका सामाजिक स्तर हमसे नीचा है तो हम कहेंगे- 'तू बैठ'। वक्ता या श्रोता की भूमिका और देश-काल की परिस्थितियों के दबाव के कारण भी भाषा में परिवर्तन होता है। इसी कारण भाषा व्यवहार अपनी प्रकृति में नवप्रवर्तनकारी (Innovative) होता है।

चॉमस्की ने 'भाषा-व्यवहार' (Parole) के समानांतर जो संकल्पना प्रस्तुत की, उसे आज 'भाषिक व्यवहार' या 'भाषायी सम्पादन' (Performance) कहा जाता है। भाषिक व्यवहार, भाषिक ज्ञान का किसी निश्चित स्थान और समय पर निश्चित प्रयोग है। चॉमस्की के अनुसार भाषिक व्यवहार भाषा के शुद्ध रूप का दूषित एवं विकृत प्रतिफलन होता है।

'भाषा-व्यवहार' का एक ढाँचा होता है, जिसके कम-से-कम दो भाग होते हैं। एक प्रेषण (वक्ता) का ढाँचा, दूसरा (श्रोता) ग्रहण का ढाँचा। 'भाषा-व्यवस्था' की आवृत्ति नहीं होती है। अगर एक वाक्य असंख्य बार बोला जाए तो 'भाषा-व्यवस्था' की दृष्टि से वह एक वाक्य होता है, जबकि 'भाषा-व्यवहार' की दृष्टि से असंख्य वाक्य होते हैं लेकिन ढाँचा बनाते समय हम उसका सामान्यीकरण कर लेते हैं। 'भाषा-व्यवस्था' में

ऐसा साधु वाक्य संभव है जिसका अन्त न हो लेकिन 'भाषा व्यवहार' में ऐसा संभव नहीं है। कई मिनट में समाप्त होने वाला वाक्य 'भाषा व्यवस्था' में सम्भव है, पर उसे बोलना या समझना कठिन होता है। प्रेषण और ग्रहण की दृष्टि से वक्ता का वाग्यंत्र और श्रोता का श्रवण-यंत्र 'भाषा व्यवहार' को प्रभावित करने वाला तत्व है। वाग्यंत्र के कारण ही व्यक्ति-विशेष की पहचान होती है। 'श्रवण-यंत्र' में खराबी होने से 'भाषा-व्यवहार' प्रभावित होता है। स्मरण शक्ति की सीमा भी 'भाषा-व्यवहार' को प्रभावित करती है। लिखित व पठित रूप में इस शक्ति की सीमा कुछ बढ़ जाती है जबकि बोलते या सुनते समय इसकी सीमा कुछ कम हो जाती है। परिवेश का प्रभाव भी 'भाषा-व्यवहार' पर पड़ता है। शोर के समय हम ठीक तरह से नहीं सुन पाते।

सस्यूर के अनुसार 'भाषा-व्यवस्था' और 'भाषा-व्यवहार' की परिभाषा एक दूसरे का संदर्भ ले कर ही की जा सकती है। भाषा तभी जीवंत मानी जा सकती है जब भाषा के ये दोनों पक्ष द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति की स्थिति में हों। 'भाषा-व्यवस्था' और 'भाषा-व्यवहार' युग्म की सार्थकता स्वीकार करने के बाद भी सस्यूर ने भाषा-विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के लिए समरूपी 'भाषा-व्यवस्था' (Long) को ही स्वीकार किया। 'भाषा-व्यवस्था' का अध्ययन करने के लिए सामग्री 'भाषा-व्यवहार' से ही प्राप्त होती है।

भाषाविज्ञान का नामकरण, परिभाषा और क्षेत्र

प्राचीन भारत में भाषा के विभिन्न अंगों के अध्ययन के लिए कोई एक नाम प्रचलित नहीं था। विभिन्न अंगों के अध्ययन के लिए विभिन्न नाम थे, जैसे-शिक्षा, निरुक्त, व्याकरण, प्रतिशाख्य आदि।

पश्चिम में वर्तमान भाषा-विज्ञान का आरंभ 1786 ई. में विलियम जोन्स द्वारा हुआ। उन्होंने संस्कृत, लैटिन, ग्रीक के तुलनात्मक अध्ययन के संकेत दिए। पश्चिम में भाषा-विज्ञान के लिए सर्वप्रथम 'कम्पेरेटिव ग्रामर' (Comparative Grammar) नाम दिया गया। वहाँ पहले व्याकरण और भाषा-विज्ञान में कोई भेद नहीं किया जाता था। जब यह स्पष्ट हुआ कि भाषा-विज्ञान केवल तुलनात्मक व्याकरण नहीं है, तब इस नाम को छोड़ दिया गया। भाषाओं की तुलना पर बल देने के कारण 18वीं शताब्दी में इसे कम्पेरेटिव फिलालोजी (Comparative Philology) नाम दिया गया। भाषा-विज्ञान तुलनात्मक ही होता है, इसलिए 'कम्पेरेटिव' शब्द का त्याग कर दिया गया। डेवीज ने 1817 ई. में भाषा-विज्ञान के लिए ग्लासोलोजी (Glossology) शब्द का प्रयोग किया, पर यह नाम भी नहीं चला। 1841 ई. में प्रिचर्ड ने ग्लाटोलोजी (Glattology) नाम प्रस्तुत किया जो चल नहीं सका।

उपर्युक्त नामों में से फिलालोजी शब्द आज तक चल रहा है। अंग्रेजी में इसके लिए साईंस ऑफ लैंग्वेज (Science of Language) नाम का प्रचलन है। वर्तमान में अधिक प्रचलित नाम लिंग्विस्टिक्स (Linguistics) है। यह शब्द लैटिन के शब्द लिंग्वा (Lingua) से बना है, जिसका अर्थ है-जीभ। भाषाविज्ञान के अर्थ में लैंग्विस्टिक (Linguistique) शब्द का प्रचलन फ्रांस में हुआ और 18वीं शताब्दी के चौथे दशक में अंग्रेजी में यह Linguistic नाम से ग्रहण किया गया। छठे दशक में यह शब्द (Linguistics) के रूप में अपनाया गया और आज तक यही नाम अधिक प्रचलित है। जर्मन भाषा में भाषाविज्ञान के लिए स्प्राचविस्सेनशाफ्ट (Sprachwissenschaft) नाम है। रूसी भाषा में इसके लिए 'यज़िकाज्जानिमे' शब्द है। इसमें 'यज़िक' का अर्थ भाषा है और 'ज्जानिमे' का अर्थ विज्ञान है।

लिंग्विस्टिक्स (Linguistics) के अर्थ में 'भाषा-विज्ञान' जैसा विषय भारत में नहीं था। भारत में भाषा के अध्ययन के लिए व्याकरण, शब्दानुशासन, शब्दशास्त्र, निर्वचनशास्त्र आदि नाम भी प्रचलित रहे हैं। लिंग्विस्टिक्स के अर्थ में वर्तमान समय में तुलनात्मक भाषा-विज्ञान, भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, तुलनात्मक भाषाशास्त्र, शब्दशास्त्र, भाषालोचन, भाषिकी, भाषातत्त्व, भाषाविचार आदि नाम प्रचलित हैं। इन सभी नामों में से 'भाषाविज्ञान' अधिक प्रचलित नाम है।

डॉ. उदयनारायण तिवारी ने 'भाषाविज्ञान' और 'भाषाशास्त्र' में अंतर माना है। वे पुरानी भाषाओं के अध्ययन-विश्लेषण को 'भाषा-विज्ञान' के अन्तर्गत रखते हैं जबकि आधुनिक भाषाओं और बोलियों के अध्ययन-विश्लेषण को 'भाषाशास्त्र'

के अन्तर्गत। उनका यह मत मान्य नहीं है। 'भाषाविज्ञान' में भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, चाहे भाषाएँ पुरानी हों या नई। 'भाषाशास्त्र' नाम को 'भाषाविज्ञान' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। डॉ. देवीशंकर द्विवेदी 'भाषाविज्ञान' के स्थान पर 'भाषिकी' का प्रयोग करते हैं। परन्तु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हो सका है। वे 'भाषाविज्ञान' (Linguistic Science) शब्द को वर्णनात्मक मानते हैं और 'भाषिकी' (Linguistics) को पारिभाषिक शब्द। पारिभाषिक शब्द के रूप में 'भाषाविज्ञान' शब्द का प्रयोग वे उचित नहीं मानते।

भाषाविज्ञान की परिभाषा

भाषाविज्ञान के अधिकांश विद्वानों द्वारा दी गई भाषाविज्ञान की परिभाषाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। भाषाविज्ञान एक विज्ञान है और इसमें भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन होता है, इससे सभी विद्वान सहमत हैं। डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के शब्दों में— 'भाषा की प्रकृति, उसके गठन तथा व्यवहार आदि की वस्तुनिष्ठ परीक्षा करने वाले विज्ञान का नाम 'भाषिकी' है।' भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'भाषाविज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा अथवा भाषाओं का एककालिक, बहुकालिक, तुलनात्मक, व्यतिरेकी अथवा अनुप्रायोगिक अध्ययन—विश्लेषण तथा तद्विषयक सिद्धांतों का निर्धारण किया जाता है।' आर.एच. रोबिन्स के अनुसार 'General linguistic may be defined as the science of language.' डॉ. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार—'भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को ही भाषा-विज्ञान कहते हैं। वैज्ञानिक अध्ययन से हमारा तात्पर्य सम्यक् रूप से भाषा के बाहरी और भीतरी रूप एवं विकास आदि के अध्ययन से है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं में कहीं भाषाओं के गठन और प्रकृति के अध्ययन की बात है, कहीं भाषा के विकास के अध्ययन की और कहीं काल विशेष से संबंधित भाषाओं के अध्ययन की बात है। चाहे भाषा के अध्ययन की विधि की बात हो, चाहे प्रकार की, चाहे विभिन्न भाषाओं की तुलना हो या प्रयोग की बात हो, अध्ययन तो भाषा से ही संबंधित है। इसलिए संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषाविज्ञान एक ऐसा विषय है जिसमें भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन होता है।

भाषाविज्ञान का क्षेत्र

भाषाविज्ञान का संबंध किसी भाषा विशेष से नहीं है। संसार की सभी भाषाएँ और बोलियाँ इसके अध्ययन क्षेत्र में आती हैं। काल-विस्तार की दृष्टि से अगर किसी छोटे काल-खंड की भाषा का अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाता है, तो यह सांकालिक भाषा विज्ञान के अंतर्गत आता है। अगर अपेक्षाकृत विस्तृत काल-खंड की भाषा का अध्ययन होता है तो यह कालक्रमिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत आता है। सांकालिक भाषा-विज्ञान को वर्णनात्मक भाषाविज्ञान और कालक्रमिक भाषाविज्ञान को ऐतिहासिक भाषाविज्ञान भी कहा जाता है।

देश-विस्तार से अगर भाषाओं की संख्या एक से अधिक हो और उनका अध्ययन तुलनात्मक दृष्टि से हो तो यह तुलनात्मक भाषाविज्ञान से संबंध रखता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान सांकालिक या कालक्रमिक हो सकता है। सांकालिक अध्ययन में यदि प्रत्येक भाषा के मिलते-जुलते लक्षणों के

वर्ग बनाकर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो इस प्रकार का अध्ययन प्रकार विज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

बोली विज्ञान भी भाषाविज्ञान के क्षेत्र का अंग है। बोली विज्ञान में बोलियों का वर्णन, बोलियों के प्रसार क्षेत्र का निर्धारण और बोलियों के प्रयोग की खोज की जाती है। बोलियों के भौगोलिक वितरण को बोली भूगोल के अन्तर्गत रखा जाता है।

भाषा की पाँच उपव्यवस्थाएँ भी भाषाविज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र हैं।

1. **स्वानिकी**— स्वानिकी में ध्वनियों के भौतिक शरीर की परीक्षा की जाती है। इसकी तीन शाखाएँ हैं— (क) औच्यारिकी — इसमें मानव-शरीर में स्थित फेफड़ों से बाहर आने वाली हवा किस स्थान पर किस तरह प्रभावित हो कर ध्वनि उत्पन्न करती है, इसका अध्ययन किया जाता है। (ख) सांचारिकी—मुख से निकली हुई ध्वनि वायुमंडल में ध्वनि-तरंगों का रूप ले लेती है। ये तरंगें संचरण करती हुई श्रोता की ओर बढ़ती हैं। इन ध्वनि-तरंगों का यन्त्रों की सहायता से अध्ययन सांचारिकी में होता है। (ग) श्रोतिकी—ध्वनि तरंगों को श्रोता के कान विशेष श्रवण-प्रक्रिया द्वारा ग्रहण करते हैं। यह सारी प्रक्रिया कैसे होती है इसका अध्ययन श्रोतिकी में किया जाता है।
2. **स्वानिमी** — इसमें किसी भाषा की कौन-सी ध्वनियाँ स्वनिम हैं, इसका निर्धारण किया जाता है।
3. **व्याकरण** — व्याकरण के दो अंग हैं— मर्षविज्ञान और वाक्यविज्ञान। मर्ष-विज्ञान में शब्दों के गठन का विवेचन किया जाता है। वाक्य-विज्ञान में वाक्यों-वाक्यांशों के संघटक तत्त्वों का विवेचन होता है।
4. **मर्षस्वानिमी** — यह व्याकरणिक तथा स्वानिमिक व्यवस्थाओं को जोड़ने वाली कड़ी है, जो मर्षियों की स्वानिमिक आकृति से संबंध रखती है।
5. **सीमान्तिकी** — यह व्यवस्था एक ओर व्याकरण को छूती है क्योंकि व्याकरण अर्थवान इकाइयों से संबंध रखता है और दूसरी ओर वह सांसारिक परिस्थितियों तथा वस्तुओं को छूती है, जिन्हें हम सामान्यतः अर्थ कह कर पुकारते हैं।
6. व्याकरणिक व्यवस्था के अन्तर्गत ही कोशविज्ञान आता है। इसमें कोश-निर्माण के संबंध में वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त होती है।

शब्दों के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन व्युत्पत्तिशास्त्र में होता है। इसमें शब्दों की तत्सम, तद्भव आदि कोटियाँ बनाई जाती हैं।

शैली-विज्ञान भाषा-विज्ञान के गौण अंगों के अन्तर्गत आता है। इसमें एक ही भाषा में लिखने वाले कवियों, लेखकों की शैलीगत विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। प्रोक्तिविज्ञान (**Discourse**) में आपस में सुसंबद्ध वाक्यों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। समाज भाषा-विज्ञान भाषावैज्ञानिक अध्ययन का वह

क्षेत्र है जो भाषा और समाज के बीच पाए जाने वाले हर प्रकार के संबंधों का अध्ययन-विश्लेषण करता है। लिपिविज्ञान को कुछ विद्वान भाषाविज्ञान का ही अंग मानते हैं। इसमें लिपि की उत्पत्ति, विकास और उसकी उपयोगिता पर विचार करते हैं। मनोभाषा विज्ञान में भाषा और विचार के सम्बंध, भाषा का मानसपटल पर प्रभाव, भाषा और अनुभूति आदि पक्षों का अध्ययन किया जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषा-विज्ञान के अध्ययन के क्षेत्र विस्तृत हैं। इसमें भाषा विषयक सभी दृष्टिकोणों से भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन की दिशाएं-वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक

भाषा विज्ञान का अध्ययन तीन दिशाओं में होता है- 1. वर्णनात्मक अथवा संकालिक 2. ऐतिहासिक अथवा कालक्रमिक 3. तुलनात्मक।

1. वर्णनात्मक भाषा विज्ञान- अपेक्षाकृत किसी छोटे काल-खंड की भाषा का अध्ययन एवं विश्लेषण करके कुछ नियमों का निर्धारण वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत आता है। इसमें इसके नाम के अनुसार ही किसी भाषा के स्वरूप का वर्णन या विश्लेषण होता है। इस भाषा-विज्ञान को व्याकरण भी कहते हैं। सस्यूर ने वर्णनात्मक भाषाविज्ञान को स्थित्यात्मक कहा है और इसका उदाहरण पाणिनी का व्याकरण है। भाषा के उच्चरित रूप को लेकर स्वानिकी, स्वानिमी, और व्याकरण की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन में वर्णनात्मक प्रणाली का रूप प्रमुख हो गया है; इसलिए वह स्वतंत्र विज्ञान के रूप में ग्रहण किया जाने लगा है। इस प्रणाली के अनुगामी भाषाविज्ञान के अध्ययन में किसी दूसरे शास्त्र की सहायता लेना पसन्द नहीं करते। यहाँ तक कि सीमान्तिकी को भी उन्होंने अपने अध्ययन की सीमा से बाहर रखा है।

भाषा के दो पक्ष हैं-ध्वनन और श्रवण। भाषा के अध्ययन की पूर्णता के लिए श्रवण भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना ध्वनन।

श्रवण का संबंध भाषा के अर्थ-पक्ष से है। अर्थ-पक्ष का अध्ययन सीमान्तिकी के अन्तर्गत होता है। अगर बातचीत में अर्थबोध ही न हो तो ध्वनि की उपयोगिता कुछ भी नहीं रह जाती। इसलिए सीमान्तिकी के अध्ययन के बिना वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान अधूरा है।

2. ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान- अपेक्षाकृत विस्तृत काल-खंड की किसी एक भाषा के स्वरूप का अध्ययन ऐतिहासिक भाषा-विज्ञान में होता है। इसमें किसी भाषा के पुराने रूपों से नए रूपों का विकास दिखाया जाता है। सस्यूर ने ऐतिहासिक प्रणाली को गत्यात्मक या विकासात्मक प्रणाली कहा है।

भाषा के ऐतिहासिक अध्ययन में वर्णनात्मक अध्ययन अनायास आ जाता है, क्योंकि विकास दिखाते समय भी काल-विशेष की स्थिति को दिखाना आवश्यक होता है। भाषा में निरन्तर परिवर्तन आता रहता है, किन्तु वह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि उसे ग्रहण करना असम्भव होता है। कालान्तर में जब परिवर्तन की

मात्रा बढ़ जाती है और उसे अनुभव किया जाने लगता है, तब उसके विकास के भिन्न सोपानों का अध्ययन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

3. **तुलनात्मक भाषाविज्ञान**— भाषाविज्ञान की इस प्रणाली में वर्णनात्मक या ऐतिहासिक प्रणाली का समन्वय हो जाता है। तुलना के लिए एक से अधिक भाषाओं का अध्ययन किया जाता है। अध्ययन में अगर किसी काल-विशेष के स्वरूपों को लिया जाता है, तो वर्णनात्मक प्रणाली इसके अन्तर्गत आ जाती है। अगर अध्ययन में भिन्न कालों के स्वरूपों को आधार बनाया जाए तो ऐतिहासिक प्रणाली इसके अन्तर्गत आ जाती है। वस्तुतः भाषाविज्ञान का जन्म ही तुलनात्मक प्रणाली से हुआ। अठारहवीं शताब्दी में संस्कृत, ग्रीक और लैटिन का तुलनात्मक अध्ययन विलियम जोन्स ने किया, उससे यह बात सिद्ध हुई कि ये तीनों भाषाएँ एक परिवार की हैं। भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त समानताएँ ही हैं। तुलना में असमान या विरोधी बातें भाषाविज्ञान में विशेष उपयोगी नहीं मानी जाती। अगर असमानताओं का प्रतिशत अधिक हो तो मान लिया जाता है कि संबद्ध भाषाएँ एक परिवार की नहीं हैं।

अनुवाद और भाषा शिक्षण में तुलनात्मक प्रणाली महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। एक भाषा बोलने वाला जब दूसरी भाषा सीखता है, तो दोनों भाषाओं की असमानताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जिससे भाषा सीखने में उत्पन्न हुई कठिनाई दूर हो जाती है। इसी तरह अनुवाद करते समय भी दो भाषाओं के बीच पाई जाने वाली असमानताएँ ही कठिनाई उत्पन्न करती हैं। बीसवीं शती के दूसरे चरण में जब असमानताओं की उपयोगिता का पता चला तब तुलनात्मक भाषा-विज्ञान को 'व्यतिरेकी भाषा-विज्ञान' का (Contrastive Linguistics) नाम दिया गया था।

समाज भाषाविज्ञान का परिचय

समाज भाषाविज्ञान को समाज के सन्दर्भ में भाषा के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जाता है। समाज के किसी एक या सभी पक्षों का भाषा के प्रयोग के तरीकों पर प्रभाव का अध्ययन करने वाले शास्त्र को समाज भाषाविज्ञान कहा जाता है। यह शास्त्र कुछ-कुछ आनुभविक (Empirical) और कुछ-कुछ सैद्धांतिक है। इस क्षेत्र में कार्य करते समय क्षेत्र में जाकर तथ्य एकत्रित किए जाते हैं और अपने अनुभवों के बारे में सोचा भी जाता है। यह अलग बात है कि शोधकर्ता के अपने अनुभवों का क्षेत्र सीमित है और उस पर निर्भर रहने से पूर्ण तथ्य सामने नहीं आते।

भाषा-विभिन्नता का अध्ययन इस शास्त्र की मूल कुंजी है। इसके अनुसार भाषा एक चर (Variable) है और वह बदलती रहती है। भाषा की प्रकृति समरूपी न होकर विषमरूपी (Heterogeneous) है। भाषा की व्यवस्था समाज के अनुरूप होती है और उसका विकास सामाजिक विकास के समानान्तर चलता है।

समाज भाषाविज्ञान के अध्ययन में वर्णनात्मक भाषाविज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और नृविज्ञान की सहायता ली जाती है। वर्णनात्मक भाषाविज्ञान के विभिन्न अंगों – स्वानिकी, स्वानिमी, अर्थ विज्ञान, वाक्य विज्ञान, मर्ष विज्ञान, शब्दावली (शब्दविज्ञान) के आधार पर विभिन्न समूहों की भाषा विभिन्नता का अध्ययन किया जाता है। भाषा विभिन्नता का अध्ययन विभिन्न सामाजिक चरों (Variables) – धर्म, पद, लिंग, आयु, वर्ग, जाति, शिक्षा, सजातीयता ... को भी आधार बनाया जाता है।

विश्व को अगर एक बड़ा समाज मान लिया जाए तो हम पाएंगे कि एक भाषा बोलने वाले समूह की शब्दावली अन्य भाषा बोलने वाले समूह से अलग होती है। हिन्दी में चाचा, ताऊ, मामा, मौसा जैसे संबंध बताने वाले शब्दों का यूरोपीय भाषाओं में अभाव है।

समाज के सन्दर्भ में भाषा का अध्ययन करते समय हमारे सामने कुछ ऐसे तथ्य सामने आते हैं जिनकी ओर पहले हमारा ध्यान गया ही नहीं होता या हम उन्हें अनदेखा कर गए होते हैं। एक ही समूह के अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा एक ही शब्द अलग तरह से उच्चरित होता है या व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा के शब्दों का उच्चारण अन्य भाषा बोलने वाले समूह के व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग होता है। जैसे साईंस, सड़क, भला, सेहत, शाम, वन्दना आदि कितने ही शब्दों का उच्चारण ब्रज या अवधी भाषी, डोगरी भाषी, कश्मीरी भाषी, लद्दाखी भाषी, भद्रवाही भाषा द्वारा अलग-अलग होता है।

यह भी देखा गया है कि एक भाषा बोलने वाला व्यक्ति जब किसी दूसरी भाषा बोलने वाले व्यक्ति से बात करता है तो कुछ शब्द अपनी मातृभाषा के, कुछ सामने वाले की मातृभाषा के और कुछ ऐसी भाषा के प्रयोग करता है जिसे दोनों समान रूप से समझते हों। जैसे यह संभव है कि कम पढ़ा लिखा पंजाबी भाषी हिन्दी भाषी से बात करे तो हिन्दी, पंजाबी शब्दों के अतिरिक्त कुछ अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी कर जाए। ऐसा इस बात पर भी निर्भर है कि सामने वाला व्यक्ति प्रभावशाली है या नहीं। अगर प्रभावशाली है तो उसकी भाषा में बातचीत को अधिमान दिया जाएगा, ऐसी स्थिति में शब्दावली और व्याकरण किसी एक भाषा के अनुरूप नहीं रहेगा। एक मातृभाषी दुकानदार के सामने जब अन्य मातृभाषी ग्राहक खड़ा होता है तो वह यथासंभव उसकी भाषा में बोलने का प्रयत्न करता है जिससे समाजभाषाविज्ञान के अध्ययन की सामग्री तो प्राप्त होती ही है, हमारा मनोरंजन भी होता है।

समाजभाषाविज्ञान में दूसरी भाषाओं से उधार लिए गए शब्दों का अध्ययन भी होता है। मातृभाषा, व्याकरण, बहुभाषिकता, भाषा और संस्कृति के संबंध में उपस्थित समस्याओं का अध्ययन भी यह शास्त्र करता है। ब्राजील और कोलंबिया के कुछ क्षेत्रों के आदिवासी अलग-अलग भाषा बोलने वाले समूहों में बंटे हुए हैं। वहां की सामान्य भाषा टुकानो है जिसका प्रयोग वहां के निवासी बाहर के व्यक्तियों से व्यवसाय करने के लिए करते हैं। वहां के समूहों में यह नियम है कि समूह के युवक/युवती का विवाह किसी दूसरे समूह में ही किया जा सकता है और मां अपने बच्चों के साथ बच्चों के पिता की भाषा में ही बातचीत करेगी। इस प्रकार वहां के बच्चों की मातृभाषा नहीं होती। एक बड़े परिवार में अगर अलग-अलग समूहों की औरतें हैं, तो ऐसी स्थिति में परिवार की कोई सामान्य भाषा नहीं है। सभी औरतें आपसी बातचीत में अपने समूह की भाषा प्रयोग करने में स्वतंत्र हैं। ऐसा होने पर भी पिता की भाषा में परिवर्तन के तथ्य बहुत अधिक प्राप्त नहीं हुए जिससे यह परिणाम निकला कि प्रतिकूल परिस्थिति में भी भाषा का हस्तांतरण हो सकता है। इसका कारण यह है कि बड़े परिवार के अन्य सदस्यों से सम्पर्क के कारण वे और बच्चे देसी भाषा (Native Language) सीख जाते हैं। ऐसे समूहों में व्याकरण से जुड़ी समस्या यह है कि अगर कोई व्यक्ति किसी समूह की भाषा की व्याकरण की पुस्तक लिखना चाहे तो समूह के किन व्यक्तियों को सामने रख कर वह कार्य करे। दूसरी समस्या संप्रेषणीयता की है। किसी एक समूह में बाहर से आने वाला व्यक्ति किस भाषा का प्रयोग करे क्योंकि एक परिवार में ही बहुत-सी भाषाएँ बोली जाती हैं। एक अन्य समस्या भाषाओं को सीखने को लेकर है। एक ही परिवार का व्यक्ति अन्य सदस्यों से बातचीत करने के लिए बूढ़ा होने तक भाषाएँ सीखता रहता है। आवश्यकता की दृष्टि से परिवार के प्रत्येक सदस्य से अपेक्षा की जाती है कि वह पिता की भाषा, माता की भाषा (ताकि मां के समूह में विवाह किया जा सके) और सामान्य भाषा टुकानो सीखे। यहां चौथी समस्या भाषा और संस्कृति के संबंध को लेकर है। सांस्कृतिक दृष्टि से प्रत्येक भाषा में कुछ ऐसे शब्द हाते हैं जिनके पर्यायवाची दूसरी भाषाओं में नहीं पाए जाते क्योंकि वे समूह विशेष की सांस्कृतिक संकल्पना को प्रकट करते हैं।

ब्राजील और कोलंबिया के उपर्युक्त संदर्भ में यह नहीं बताया जा सकता कि किस समूह की निश्चित

रूप से कौन-सी भाषा है। समूहों के सामाजिक नियमों और सन्दर्भों के बिना किसी भी समूह की भाषा के बारे में निश्चित रूप से कोई चर्चा नहीं की जा सकती।

अगर विभिन्न सामाजिक चरों के सन्दर्भ में भाषा की विविधता पर ध्यान दें तो हम पाएँगे कि चरों के आधार पर एक व्यक्ति की भाषा दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है। अंग्रेजी में पढ़े-लिखे व्यक्ति, केवल संस्कृत जानने वाले व्यक्ति और अनपढ़ व्यक्ति की भाषा में अंतर होता है। विभिन्न जातियों, धर्मों, स्त्री-पुरुषों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा में भी अंतर होता है। वक्ता की भाषा सुनकर उसके सामाजिक स्तर का अनुमान भी लगाया जा सकता है। एक ही बात कहने के लिए विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के साथ अलग-अलग भाषा और वाक्य विन्यास का प्रयोग देखा जा सकता है। किया-करा, आना-आइयो, उन्होंने-उन्ने, मुझको-मेरे को-मैंने, मुझ से आदि पर्यायवाची समाज में भाषा-प्रयोग के धरातल पर भिन्नता को सूचित करते हैं।

प्रयोजन के धरातल पर समाज भाषाविज्ञानी सामाजिक प्रवृत्तियों का अध्ययन करके यह निर्धारित करता है कि व्यवसाय के क्षेत्र में किस प्रकार की भाषा का प्रयोग उचित नहीं समझा जाता। समाजभाषाविज्ञान की निम्नलिखित मूल संकल्पनाएँ हैं जिन पर समाज भाषावैज्ञानिक जांच-पड़ताल निर्भर करती है : 1. वाक्यसमूह (Speech community), 2. भाषा विविधता (Language Varieties), 3. बोली, 4. व्यक्ति बोली (Idiolect), 5. मानक भाषा और 6. भाषिक इकाइयाँ।

संरचनात्मक भाषाविज्ञान और समाज भाषाविज्ञान में अंतर

संरचनावादियों और प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक नोम चॉमस्की के अनुसार वर्णनात्मक भाषा विज्ञान और समाज भाषा विज्ञान में अंतर को भाषा की संरचना (Structure) के संदर्भ में देखा जा सकता है। ये भाषाविज्ञानी भाषा को सामाजिक संदर्भ से अलग करके देखते हैं। इनके अनुसार भाषा विज्ञान का कार्य भाषा विशेष के नियमों की खोज करना है। इस खोज के पश्चात ही समाज भाषा विज्ञान का कार्य आरंभ होता है, जो यह देखता है कि भाषा विशेष के लिए निर्धारित नियमों का समाज के साथ क्या संबंध है। जैसे विभिन्न समूहों या व्यक्तियों द्वारा एक भाव या विचार व्यक्त करने के लिए कौन से अलग-अलग तरीके हैं।

वर्णनात्मक भाषा विज्ञान और समाज भाषा विज्ञान में अंतर केवल इतना नहीं है कि वर्णनात्मक भाषाविज्ञान द्वारा की गई स्वानिकी, स्वानिमी, मर्षविज्ञान, वाक्यविज्ञान और सीमान्तिकी के नियमों की खोज का प्रयोग समाज भाषाविज्ञान करता है। समाज और भाषा के सम्बन्धों के सन्दर्भ में की गई खोज के निष्कर्ष वर्णनात्मक भाषा विज्ञान के लिए भी प्रासंगिक होते हैं। अर्थ के क्षेत्र में यह पाया गया है कि जिस अर्थ को कुछ भाषाएँ व्यक्त कर सकती हैं उस अर्थ को अन्य भाषाएँ व्यक्त नहीं कर सकतीं। यह कठिनाई अनुवाद करते हुए उस समय उपस्थित होती है जब अनुवाद से संबंधित भाषाएँ विभिन्न संस्कृतियों से जुड़ी हुई हों और उनके पास विभिन्न प्रथाओं, वस्तुओं, संस्थाओं आदि के नाम हों। उदाहरण के रूप में पंजाबी शब्द 'बुककल' का हिन्दी में और हिन्दी शब्द 'योग' का अंग्रेजी में अनुवाद नहीं किया जा सकता। कुछ भाषाओं में समस्या शब्दार्थ के साथ जुड़े हुए अन्य घटकों की भी है। जैसे अंग्रेजी शब्द 'ईट' (Eat) का जर्मनी में अनुवाद

दो विभिन्न तरीकों से किया जाएगा। जर्मनी में यह देखा जाएगा कि खाने वाले मनुष्य है या पशु। मनुष्य और पशु की संकल्पना तो अंग्रेजी में भी है लेकिन मनुष्य, पशु और खाने के संयोजन की अलग-अलग व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार के उदाहरणों से एक संभावना यह उत्पन्न होती है कि एक ऐसे शब्द कोश का निर्माण किया जाए जिसमें विश्व की सभी भाषाओं के शब्द अपने घटकों और सामाजिक संदर्भों सहित अर्थ को व्यक्त करें।

व्याकरण के क्षेत्र में एक ही भाषा की विविधता के भीतर एक बात कहने के लिए वाक्य की संरचना अलग-अलग है। मुख्य भूभाग की अंग्रेजी में **have+Past Participle** संरचना के स्थान पर आइरिश अंग्रेजी में **be after** का प्रयोग किया जाता है। जैसे **I have just seen him** के स्थान पर **I am after seeing him.**

यूरो-अजटेक की भाषा कोरा में **u-** और **a-** प्रत्ययों का प्रयोग 'भीतर' और 'बाहर' के अर्थ में होता है। 'भीतर' और 'बाहर' अर्थ सटीक न होकर निकटता को प्रकट करते हैं। यह कहने के लिए कि 'कुत्ते की दुम काट कर छोटी कर दी गई है' कभी **u-** और कभी **a-** प्रत्यय जुड़ने से बने वाक्यों में अंतर यह है कि एक स्थिति में कुत्ते को पीछे से देखा गया है और दूसरी स्थिति में एक तरफ से। इसका कारण वहां के लोगों की चाक्षुष ज्योमिति में छिपा है। जब ऊँचाई की ओर दृष्टि एक लाइन में होती है तब वे **u-** का प्रयोग करते हैं। जब लाइन से बाहर होती है तब **a-** का प्रयोग किया जाता है।

वक्ता, श्रोता और जिसके बारे में बात की जा रही है उनके बीच के सामाजिक संबंधों में सामर्थ्य और एकात्मकता (**Power and Solidarity**) व्यक्त होती है। एकात्मकता से अभिप्राय लोगों के संबंधों के बीच की दूरी से है – वे कितने अनुभव, कितनी सामाजिक विशेषताएँ (धर्म, लिंग, आयु, क्षेत्र, जाति, व्यवसाय, हित आदि), कितनी अन्तरंगता आदि साझा करते हैं। व्याकरण के केन्द्र में सामर्थ्य – एकात्मकता संबंध होते हैं। इन्हें अंग्रेजी के संबोधकों (**Vocatives**) में देखा जा सकता है। जॉन ब्राउन नाम का व्यक्ति अगर अंतरंग है तो कहेंगे हैलो जॉन अगर दूर का प्रभावी व्यक्ति है तो कहेंगे हैलो मिस्टर ब्राउन। नामों के अतिरिक्त यह प्रवृत्ति सर्वनामों के उपयोग में भी देखी जा सकती है। अगर कोई व्यक्ति अंतरंग है तो उसके लिए हम कह सकते हैं – तुम इधर बैठो। अगर व्यक्ति दूर का और प्रभावशाली है तो कहेंगे – आप इधर बैठिए। वक्ता अपने लिए 'मैं' या 'हम' का प्रयोग करता है। अगर वह किसी प्रभावशाली व्यक्ति के सामने खड़ा है तो वह अपने लिए अन्य पर्यायवाची उपयोग करेगा, जैसे – दास, खादिम आदि। कुछ भाषाओं में क्रिया कुछ अन्य सूचनाएँ भी देती है, जैसे काल, प्रश्न, आज्ञा और निषेध की। इटैलियन में क्रिया केवल यह नहीं बताती कि वाक्य आज्ञार्थक है या नहीं, वह यह भी बताती है कि जिसे संबोधित किया गया है वह अंतरंग है या नहीं। बास्क भाषा में क्रिया श्रोता के साथ सामाजिक संबंध के अतिरिक्त उसका लिंग भी बताती है। जापानी में 'डा' नपुंसक लिंग है। पुरुष के साथ बातचीत में इसका रूप होगा 'डुक' और स्त्री के साथ बातचीत में 'डुन'।

स्पष्ट है कि एक बात कहने के लिए भाषाओं की संरचना में सदैव एकरूपता नहीं होती। सामाजिक सम्बन्ध बदलने पर संरचना भी बदल जाती है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान में भाषिक क्षमता की बात एक भाषा बोलने वाले पूरे समूह को सामने रख कर की जाती है, न कि समाजभाषाविज्ञान की तरह समूह विशेष या एक व्यक्ति को सामने रख कर। अगर हम 'Sidewalk' शब्द पर विचार करें तो पाएँगे कि अधिकांश अंग्रेजी बोलने वाले इस शब्द के बारे में चार तथ्य जानते हैं – 1. इसका उच्चारण 'साइडवाक' है। 2. यह ब्रिटिश शब्द Pavement का पर्यायवाची है जिसका अर्थ है सड़क के किनारे चलने के लिए बना ऊँचा रास्ता। 3. यह जातिवाचक संज्ञा है और 4. इसका प्रयोग अमेरिकन करते हैं, ब्रिटिश नहीं। इस संदर्भ में एक अमेरिकन की भाषिक क्षमता में एक अर्थ के लिए 'Sidewalk' शब्द होगा जबकि एक आम ब्रिटिश की भाषिक क्षमता में Pavement शब्द होगा। समाजभाषाविज्ञान भाषिक क्षमता के संदर्भ में एक समूह या एक व्यक्ति की भाषिक क्षमता को भी अध्ययन का विषय बनाता है।

वर्णनात्मक भाषाविज्ञान भाषावैज्ञानिक इकाइयों से जुड़े तथ्यों पर ध्यान केंद्रित नहीं करता। वह भाषा का प्रयोग करने वाले विशिष्ट वक्ता, श्रोता और परिस्थिति पर विचार नहीं करता जबकि समाजभाषाविज्ञान ऐसा करता है।

समाजभाषाविज्ञान का क्षेत्र वृहत है, जबकि वर्णनात्मक भाषाविज्ञान का क्षेत्र सीमित है।

भाषा के समाज शास्त्र और समाजभाषाविज्ञान में अंतर

फिशमैन के अनुसार भाषा का समाज शास्त्र ऐसा शास्त्र है जिसमें समाज पर भाषा के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। यह शास्त्र समाज भाषा विज्ञान से संबंधित है जो कि भाषा पर समाज के प्रभाव का अध्ययन करता है। भाषा का समाजशास्त्र समाज का अध्ययन भाषा के सम्बन्ध में करता है जबकि समाजभाषाविज्ञान भाषा का अध्ययन समाज के संबंध में करता है। समाजभाषाविज्ञान अपना अध्ययन भाषा पर केंद्रित करता है जबकि भाषा के समाजशास्त्र के अध्ययन का केन्द्र समाज होता है। भाषा के समाजशास्त्र और समाजभाषाविज्ञान में अंतर इस बात को लेकर है कि शोधार्थी समाज को अधिक महत्व देता है या भाषा को और उसकी क्षमता भाषा वैज्ञानिक संरचना के विश्लेषण की है या सामाजिक संरचना के विश्लेषण की है। बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जहां दोनों एक दूसरे को अधिव्याप्त (Overlap) करते हैं। अभी तक जितना कार्य हुआ है उसे देख कर इन दोनों के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना कठिन है।

भाषा का समाज शास्त्र यह समझने की चेष्टा करता है कि किस प्रकार व्यक्ति या समूह के भाषा प्रयोग द्वारा सामाजिक गत्यात्मकता प्रभावित होती है। इसका संबंध इससे है कि कौन किन परिस्थितियों में किसके साथ किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है। किस प्रकार व्यक्ति या समूह की पहचान उस भाषा द्वारा स्थापित होती है जिसका वह प्रयोग कर रहा है।

भाषा का समाजशास्त्र भाषा और समाज के बीच सम्बन्धों का अध्ययन है। इसके अध्ययन का केन्द्र भाषा के व्यवहार का सामाजिक संस्थान है जिसमें न केवल भाषा का प्रयोग शामिल है बल्कि भाषा का व्यवहार और भाषाओं के प्रति व्यवहार और भाषा का प्रयोग करने वालों के प्रति व्यवहार भी शामिल है।

इस क्षेत्र का आरंभ यह मानने से होता है कि भाषा एक सामाजिक मूल्य है। इसमें सामाजिक समूहों की परस्पर सम्पर्क की भाषा पर खोज का कार्य होता है। विशेष रूप से बहुभाषिकता और भाषा असहमति (विरोध, संघर्ष)। फिशमैन के अनुसार अध्ययन के दो स्तर हैं – भाषा का वर्णनात्मक समाज शास्त्र जिसमें यह बताया जाता है कि कौन किससे कब किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है और भाषा की सामाजिक गत्यात्मकता – जिसमें अलग-अलग समूहों में भाषा परिवर्तन की अलग-अलग गति की व्याख्या की जाती है।

भाषा के समाजशास्त्र के अन्तर्गत अब तक जो अध्ययन हुआ है उसके निम्नलिखित क्षेत्र हैं : भाषा सम्पर्क और फैलाव, सामाजिक बहुभाषिकता, भाषा नीति और योजना, भाषा व्यवहार, शिक्षा में भाषा नीति, भाषा अनुरक्षण और भाषा परिवर्तन और डाइग्लोसिया (Diglosia)।

स्वानिकी (ध्वनि-विज्ञान)**स्वन (ध्वनि) की परिभाषा :-**

हम अपने आस-पास जिन ध्वनियों को सुनते हैं, उनकी उत्पत्ति उत्पादक द्रव्य में कम्पन द्वारा होती है। प्रत्येक कम्पन ध्वनि है। यह अलग बात है कि बहुत से कम्पन ऐसे होते हैं, जिन्हें हम सुन नहीं सकते। वैज्ञानिक दृष्टि से ध्वनि वायुमंडलीय दबाव में परिवर्तन या उतार-चढ़ाव का नाम है। भाषाविज्ञान में ध्वनि को सामान्य ध्वनि से अलग करने के लिए उसे भाषा-ध्वनि (Speech sound) या वाक्स्वन भी कहा जाता है। 'स्वन' भाषा में प्रयुक्त ध्वनि की वह लघुतम इकाई है, जिसका उच्चारण और श्रोतव्यता की दृष्टि से स्वतंत्र व्यक्तित्व हो। स्वनों का उत्पादन मनुष्य के वाग्यंत्र से होता है और कोई भी व्यक्ति जो सुनने में समर्थ है, सुन सकता है।

स्वानिकी (ध्वनि-विज्ञान) की परिभाषा :-

स्वानिकी भाषा के अध्ययन का वह विभाग है जिसमें हम ध्वनियों के भौतिक शरीर की परीक्षा करते हैं। इसमें स्वनों के अर्थ का अध्ययन नहीं किया जाता।

फेफड़ों से बाहर आने वाली साँस को अनेक प्रकार के मार्गों से निकलना पड़ता है। बाहर निकलते हुए अनेक प्रकार की बाधाओं का सामना भी करना पड़ता है। इस प्रकार बाधित हुई साँस ही ध्वनि का रूप ले लेती है। बोलते समय वाक्-अवयवों द्वारा साँस पर जो क्रिया की गई उसका विवेचन करते हुए ध्वनियों का वर्गीकरण और विश्लेषण किया जा सकता है। किसी ध्वनि का उच्चारण मुख के किस भाग से जिह्वा और ओठों की कितनी तथा कैसी सक्रियता के साथ हो रहा है, इसका अध्ययन भी किया जाता है। यह सारा अध्ययन ध्वनि के उच्चारण-पक्ष से सम्बंधित है। यह अध्ययन स्वानिकी की जिस शाखा का निर्माण करता है, उसे औच्चारिकी कहते हैं।

मुख से निकला हुआ ध्वनि-श्वास वायुमंडल में ध्वनि-तरंगों का रूप ले लेता है। वायुमण्डल में संचरण करती हुई ये तरंगें सभी ओर फैलती हैं। इन ध्वनि-तरंगों का अध्ययन सांचारिकी नामक शाखा में किया जाता

है। ये तरंगें अंततः श्रोता के कानों में पहुँचती हैं। कान सुनने की विशेष प्रक्रिया द्वारा इन तरंगों को ग्रहण करता है। इन तरंगों को ग्रहण कैसे किया जाता है, इसका अध्ययन श्रौतिकी नामक शाखा में होता है। स्वानिकी की इन तीन शाखाओं—औच्चारिकी, सांचारिकी और श्रौतिकी में ध्वनियों के भौतिक शरीर की ही परीक्षा होती है।

वाक्-अवयव

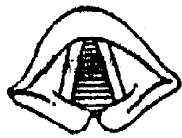
ध्वनियों के निर्माण में मनुष्य-शरीर के कुछ अंग उत्तरदायी होते हैं। इन अंगों को वाक्-अवयव या वाक्-अंग कहा जाता है। वाक्-अवयवों का सामूहिक नाम वाग्यंत्र है। मनुष्य-शरीर में निम्नलिखित वाक्-अवयव होते हैं :



- | | |
|-----------------------|-------------------|
| 1. ओष्ठ | 10. जिह्वामध्य |
| 2. दन्त | 11. जिह्वापश्च |
| 3. वर्सु | 12. जिह्वामूल |
| 4. कठोर तालु (मूर्धा) | 13. नासाद्वार |
| 5. कोमल तालु (उत्कंठ) | 14. ग्रसनी |
| 6. अलिजिह्वा | 15. अभिकाकल |
| 7. जिह्वानोक | 16. स्वरयंत्र |
| 8. जिह्वाफलक | 17. स्वरतंत्रियाँ |
| 9. जिह्वाग्र | 18. फेफड़े |

1. **ओष्ठ** – दोनों ओठों के लिए 'ओष्ठ' शब्द का प्रयोग किया जाता है। ध्वनियों के सृजन के लिए निचला ओठ अधिक सक्रिय होता है। यह ऊपर के ओठ के अतिरिक्त ऊपर के दाँतों से भी सम्पर्क स्थापित करता है।
2. **दन्त** – दाँतों के लिए 'दन्त' शब्द का प्रयोग किया जाता है, किन्तु वास्तव में ध्वनियों के उच्चारण में ऊपर के दाँतों का ही महत्त्व है और 'दन्त' से हमारा तात्पर्य अधिकतर उन्हीं से होता है। यह जिह्वानोक जिह्वाफलक और निचले ओठ का कार्य क्षेत्र है।
3. **वर्ष्व-कठोर तालु** – (मूर्धा) के ओर ऊपर के दाँतों के बीच का भाग वर्ष्व है। अँगुली अथवा जिह्वानोक से छूने पर ऊपर के दाँतों के पीछे उठा हुआ एक खुरदरा भाग मिलता है। इसी का नाम वर्ष्व है यह जिह्वानोक और जिह्वाफलक का कार्य-क्षेत्र है।
4. **कठोर तालु (मूर्धा)** – कोमल तालु के आगे का कठोर भाग कोमल तालु अथवा मूर्धा है। मूर्धा शब्द का प्रयोग कठोर तालु के पिछले भाग के लिए किया जाता है, परन्तु कुछ विद्वान इस शब्द का प्रयोग समग्र कठोर तालु के लिए भी करते हैं। कठोर तालु जिह्वानोक का कार्य-क्षेत्र है।
5. **कोमल तालु (उत्कंठ)** – अलिजिह्वा के आगे का तालु-विभाग जो अँगुली से छूने पर कोमल प्रतीत होता है, कोमल तालु अथवा उत्कंठ कहलाता है। यह जिह्वापश्च का कार्य-क्षेत्र है। नासा-द्वार बन्द करने में यह पीछे की ओर हटता है।
6. **अलिजिह्वा** – जीभ के पीछे की ओर ऊपर से लटकता हुआ माँस का टुकड़ा अलिजिह्वा है, जिसे बोलचाल में लोग 'कौआ' कहते हैं। यह नासा-द्वार बन्द करने में ऊपर उठकर सहायक होता है, जिह्वापश्च के पिछले भाग से सम्पर्क कर सकता है, उसकी ओर कुछ सीमा तक बढ़कर रुक सकता है ताकि वायु के लिए एक संकीर्ण मार्ग बना रहे और वायु के झटके से कंपन कर सकता है।
7. **जिह्वानोक** – जीभ का सबसे आगे रहने वाला बिन्दु जिह्वानोक है। जीभ के समस्त भागों में नोक सबसे अधिक गतिशील है। यह दाँतों, वर्ष्व और मूर्धा की ओर उठकर अनेक प्रकार की क्रियाएँ करती है और छू भी सकती है।
8. **जिह्वाफलक** – वर्ष्व के नीचे फैला हुआ जिह्वा का अंश जिह्वाफलक कहलाता है। यह ऊपर के दाँतों और वर्ष्व से सम्पर्क कर सकता है।
- 9.10 **जिह्वाग्र और जिह्वामध्य** – जिह्वा का जो भाग कठोर तालु के नीचे रहता है, उसे जिह्वाग्र कहते हैं। जिह्वाग्र मूर्धा की ओर उठता है और उसे छू भी सकता है। आवश्यकता पड़ने पर जिह्वाग्र के उत्तरांश और जिह्वापश्च के पूर्वांश के लिए सम्मिलित रूप से जिह्वामध्य शब्द का प्रयोग किया जाता है।

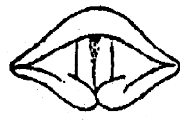
11. **जिह्वापश्च** – जिह्वापश्च जीभ का वह भाग है जो उत्कंठ अर्थात् कोमल तालु के नीचे विस्तीर्ण रहता है। यह उत्कंठ की ओर उठ सकता है और उसे छू भी सकता है। इस उन्नयन की मात्रा और पद्धति के अनुसार विविध ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। जिह्वापश्च का पीछे की ओर का अन्तिम भाग अलिजिह्वा से सम्पर्क कर सकता है।
12. **जिह्वामूल**—जिह्वामूल जिह्वा के पिछले भाग को कहते हैं, जहाँ से जिह्वा का अन्त हो जाता है। जिह्वामूल ग्रसनी की पिछली दीवार की ओर बढ़ सकता है और उसे छू भी सकता है।
13. **नासाद्वार** – ग्रसनी के ऊपर स्थित नासिका-विवर का प्रवेश द्वार नासा-द्वार कहलाता है। नासा-द्वार बन्द हो तो वायु-प्रवाह ग्रसनी और मुख-विवर के बीच होता है। नासा-द्वार खुला रहने पर बोली जाने वाली ध्वनियों में अनुनासिकता आ जाती है। 'नासिक्य व्यंजनों' में ग्रसनी की वायु नासिका-विवर के मार्ग से ही निकलती है। 'सानुनासिक स्वरों' में यह वायु मुख-विवर के साथ-साथ नासिका-विवर से भी निकलती है।
14. **ग्रसनी** – स्वरयंत्र से लेकर नासाद्वार तक फैला हुआ जिह्वामूल के पीछे का विवर ग्रसनी कहलाता है। कभी-कभी जिह्वामूल ग्रसनी की पिछली दीवार से सटकर वायु का प्रवाह रोक देता है जिससे 'ग्रसनी स्पर्श' नामक ध्वनि उत्पन्न होती है। पूर्ण स्पर्श न करके एक संकीर्ण मार्ग छोड़ देने से वायु संघर्षपूर्वक निकलती है, जिसके फलस्वरूप 'ग्रसनी संघर्षी' नामक ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं।
15. **अभिकाकल**—अभिकाकल का कार्य केवल यह है कि भोजन के समय काकल को बन्द कर दे अर्थात् श्वास-नली में खाने-पीने की वस्तुएँ न जाने दें।
16. **स्वरयंत्र** – फेफड़े से चली हुई वायु स्वरयंत्र में पहुँचती है। स्वरयंत्र हमारे वाग्यंत्र का एक अत्यंत महत्पूर्ण अंग है। कुछ ध्वनियों के निर्माण में समग्र स्वरयंत्र को आवश्यकतानुसार ऊपर-नीचे किया जाता है।
17. **स्वरतंत्रियाँ** – स्वरयंत्र में रंगमंच के पर्दों की भांति दो तंत्रियाँ होती हैं जिन्हें स्वरतंत्रियाँ कहा जाता है। इनके बीच का अवकाश काकल कहा जाता है। ये तंत्रियाँ विभिन्न प्रकार से खुलती और बन्द होती हैं तथा इस प्रकार वायु को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करके ध्वनियों में भेद उत्पन्न करती है।



(1) खुली (अघोष)



(2) बन्द



(3) घोष



(4) फुसफुसाहट

पहली स्थिति में स्वर-तंत्रियाँ दूर-दूर रहती हैं और उनके बीच से निकलती हुई वायु का कोई प्रभाव उनकी स्थिति पर नहीं पड़ता। इस प्रकार की ध्वनियाँ अघोष कही जाती हैं। दूसरी स्थिति में दोनों स्वरतंत्रियाँ परस्पर सट जाती हैं और दृढ़तापूर्वक पल भर जुड़ी रहती हैं। फलस्वरूप वायु का प्रवाह रुक जाता है। इस प्रकार उत्पन्न होने वाली ध्वनि का नाम काकल्य स्पर्श है। तीसरी स्थिति में स्वर-तंत्रियाँ परस्पर समीप आ जाती हैं और उनके बीच का मार्ग समाप्त-सा हो जाता है। लेकिन स्वर-तंत्रियाँ बहुत दृढ़ता के साथ नहीं जुड़तीं, फलतः वायु अपने निकलने भर का मार्ग बना लेती है। इससे स्वरतंत्रियों में कम्पन होने लगता है। यह कम्पन घोष कहा जाता है। जपन अथवा फुसफुसाहट चौथी स्थिति है जिसका उत्पादन कई प्रकार से किया जाता है। कभी-कभी स्वरतंत्रियों के बीच थोड़ा-सा मार्ग रहता है किन्तु उनके समीप वायु में स्थानीय विक्षोभ होता है, घोष नहीं होता। कभी-कभी स्वर-तंत्रियाँ दृढ़तापूर्वक जुड़ जाती हैं, किन्तु उनके पीछे दर्वीकास्थियाँ अपने बीच से रास्ता बना देती हैं। अन्य कई प्रकार की जपित ध्वनियों के लिए स्वरतंत्रियाँ अन्य कई स्थितियाँ ग्रहण करती हैं। भनभनाहट के उत्पादन में स्वरतंत्रियों में कम्पन तो होता है किन्तु साथ ही वायु में स्थानीय विक्षोभ भी होता है।

18. **फेफड़े** – अधिकांश ध्वनियों का निर्माण फेफड़ों से बाहर आने वाली वायु के द्वारा होता है। ये सक्रियतापूर्वक वायु को बाहर की ओर धकेलते रहते हैं। यह वायु प्रक्षेप एक लय में होता है। यही लय अनेक भाषाओं में 'वर्णों' का निर्धारण करती है।

स्वन-सृजन प्रक्रिया

जो साँस हम लेते हैं, वही स्वनों के सृजन का कारण है। अधिकांश स्वन फेफड़ों से बाहर आती हुई वायु द्वारा उत्पन्न होते हैं। यह वायु सबसे पहले स्वर-यंत्र में से गुज़रती है। स्वर-यंत्र में दो लचीले पर्दे होते हैं, जिन्हें स्वरतंत्रियाँ कहते हैं। इनकी अलग-अलग स्थितियों के कारण ध्वनियों में भेद उत्पन्न होता है। कभी ये एक-दूसरे से अधिकतम दूरी पर होती हैं, यह स्थिति सामान्य रूप से साँस लेने की है। दूसरी स्थिति में ये साँस लेने की स्थिति की तुलना में एक-दूसरे के निकट होती हैं। इस स्थिति में उत्पन्न ध्वनियों को अघोष ध्वनियाँ कहा जाता है। तीसरी स्थिति में ये एक-दूसरे के और भी निकट होती हैं और इनके बीच में से वायु घर्षण करती हुई निकल जाती है। घर्षण के कारण स्वरतंत्रियों में कम्पन होता है। इस स्थिति में उत्पन्न ध्वनियाँ घोष कहलाती हैं। चौथी स्थिति में स्वरतंत्रियाँ एक-दूसरे के इतना निकट आ जाती हैं कि हवा के गुज़रने का मार्ग लगभग बन्द-सा हो जाता है। केवल एक चौथाई मार्ग ही खुला रहता है। इस स्थिति में फुसफुसाहट वाली ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इस स्थिति में कम्पन नहीं होता।

स्वरतंत्रियों की उपर्युक्त चार मुख्य स्थितियाँ हैं। स्वरतंत्रियों के ऊपर उन्हीं जैसी दूसरी स्वरतंत्रियाँ भी होती हैं, जिन्हें कृत्रिम स्वरतंत्रियाँ कहते हैं। कभी-कभी असली स्वरतंत्रियाँ दूर रहती हैं, किन्तु कृत्रिम स्वरतंत्रियाँ

एक-दूसरे के निकट आकर वायु मार्ग को संकरा कर देती हैं, जिससे जपित स्वन उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के वाग्यंत्र से उत्पन्न होने वाले स्वनों के दो वर्ग हैं- स्वर और व्यंजन। इन दोनों की उत्पत्ति की क्रिया अलग-अलग है।

स्वरों के सृजन की प्रक्रिया :-

फेफड़ों से बाहर निकलने वाली हवा के कारण मुख-विवर में गूँज उत्पन्न होती है, जिससे स्वर स्वन उत्पन्न होते हैं। कुछ स्वनों के सृजन में यह गूँज मुख-विवर और नासिका-विवर दोनों में होती है। गूँज किस प्रकार की है, यह मुख-विवर के स्वरूप पर निर्भर करता है। मुख-विवर का स्वरूप जिह्वा, ओष्ठों, कौआ और नीचे के जबड़े की स्थिति पर निर्भर करता है।

विभिन्न स्वरों के सृजन में जीभ की अलग-अलग स्थितियाँ होती हैं। किसी स्वन के सृजन में जिह्वा का आगे वाला भाग कार्य करता है किसी के सृजन में जिह्वा का मध्य भाग तो किसी के सृजन में जिह्वा का पीछे वाला भाग कार्य करता है। जिह्वा के ये अलग-अलग भाग कभी ऊपर की ओर उठकर तालु के बिल्कुल पास चले जाते हैं। तालु के बिल्कुल पास जाने की स्थिति को संवृत कहा जाता है। कभी-कभी जिह्वा के ये भाग बिल्कुल नीचे रह जाते हैं, इस स्थिति को विवृत कहा जाता है, कभी ये भाग संवृत के पास रहते हैं, कभी विवृत के पास। कुछ स्वरों के सृजन में जिह्वा अचल रहती है तो कुछ स्वरों के सृजन में जिह्वा एक स्वर स्थिति से दूसरी स्वर स्थिति में आ जाती है।

स्वन-सृजन में ओष्ठों की स्थिति भी महत्वपूर्ण होती है। कुछ स्वरों की उत्पत्ति के समय ओष्ठ गोल हो जाते हैं, जबकि कुछ के सृजन के समय गोल नहीं होते। कुछ स्वनों के सृजन के समय मुख-विवर में गूँज कम समय तक रहती है और कुछ के सृजन के समय अधिक देर तक।

कुछ स्वरों के सृजन के समय कौआ ऊपर उठकर नासिका-विवर को बंद कर देता है और सारी हवा मुँह से निकल जाती है। कुछ स्वरों के सृजन के समय कौआ बीच में ही लटका रह जाता है और हवा का कुछ अंश नाक से भी निकलता रहता है।

उदाहरण के रूप में हिन्दी 'अ' स्वर के सृजन के समय जिह्वा का मध्य भाग विवृत की स्थिति में रहता है, ओष्ठ गोल नहीं होते, गूँज कम समय तक होती है, कौआ नासिका विवर को बंद कर देता है और सारी हवा मुख-विवर से निकल जाती है। स्वर तंत्रियों में कम्पन भी होता है। 'ऊँ' स्वर के सृजन के समय जिह्वा का पिछला भाग संवृत की स्थिति में रहता है, ओष्ठ गोल हो जाते हैं, गूँज अधिक समय तक होती है और कौआ बीच में लटकता रहता है, अतः हवा का कुछ अंश नाक से भी निकलता है। स्वर तंत्रियों में कम्पन भी होता है।

व्यंजन स्वरों का सृजन :-

स्वरयंत्र से निकलकर वायु ग्रसनी में पहुँचती है। कभी-कभी जिह्वामूल ग्रसनी की पिछली दीवार से सटकर वायु का प्रवाह रोक देता है, जिससे ग्रसनी स्पर्श नामक ध्वनि उत्पन्न होती है। अगर स्पर्श पूरा न हो और वायु संघर्ष करके निकले तो ग्रसनी संघर्षी नामक ध्वनि उत्पन्न होती है। जिह्वा के पीछे की ओर ऊपर लटकता हुआ मांस का टुकड़ा अलिजिह्वा है, इसे कौआ भी कहते हैं। यह ऊपर उठकर नासा-द्वार बन्द करने में सहायक होता है। अगर नासा-द्वार बन्द हो तो वायु ग्रसनी से होकर मुख-विवर में चली जाती है। 'नासिक्य व्यंजनों' में ग्रसनी की वायु नासिका विवर के मार्ग से ही निकलती है।

जिह्वा हमारे शरीर का एक अंग है, लेकिन उसके कई भाग माने जाते हैं। इसका कारण यह है कि अलग-अलग स्वरों के सृजन के समय जिह्वा के अलग-अलग भाग कार्य करते हैं। जिह्वापश्च कोमल तालु, (उत्कंठ) के नीचे फैला हुआ भाग है। यह कोमल तालु का स्पर्श करके भीतर से आती हुई हवा के मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है। जिससे क् ख् ग् घ् आदि कोमल तालव्य स्वरों का सृजन होता है। जब जिह्वा-पश्च कोमल तालु का स्पर्श नहीं करता लेकिन सामान्य स्थिति से ऊपर उठता है, तब हवा संघर्ष करते हुए निकल जाती है। 'ख' इसी प्रकार का स्वन है।

कठोर तालु (मूर्धा) के नीचे फैला हुआ जिह्वा का भाग जिह्वाग्र कहलाता है जिह्वाग्र के कठोर तालु की ओर उठने और कार्य-पद्धति के अनुसार विविध स्वरों का सृजन होता है। जिह्वाग्र कठोर तालु से स्पर्श करके वायु मार्ग को पूर्णतया बंद कर देता है, जिससे च् छ् ज् आदि स्वरों का सृजन होता है। जिह्वाग्र तालु का स्पर्श करके वायु को पूरी तरह रोक कर 'ज' स्वन का सृजन करता है। जैसे फ्रेंच (Agnau) आजों-भेड़)। वर्स के नीचे फैला हुआ जिह्वा का भाग जिह्वा फलक कहलाता है। यह ऊपर के दाँतों और वर्स का स्पर्श करके स्वरों के सृजन में सहायक होता है। कठोर तालु से स्पर्श की स्थिति में जिह्वा के एक या दो पार्श्व खुले रहने पर तालव्य-पार्श्विक स्वरों का सृजन होता है। इटालियन भाषा में 'ग्ल (gl) इसी प्रकार का स्वन है।

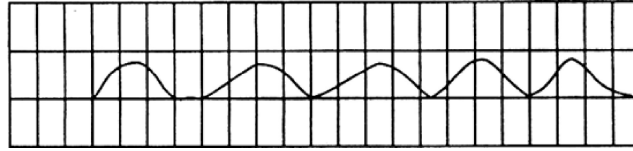
जिह्वा का सबसे आगे रहने वाला बिन्दु जिह्वानोक कहलाता है। यह भाग दाँतों, वर्स और कठोर तालु की ओर उठकर अनेक क्रियाएँ करता है, और इसे छू भी सकता है, जिससे अनेक स्वरों का सृजन होता है। जिह्वा-नोक के वर्स को स्पर्श करने के फलस्वरूप वायु का प्रवाह बाधित होता है और वह एक या दोनों पार्श्वों से निकल जाती है, जिससे 'ल्' स्वन का सृजन होता है। ऊपर के दाँतों का स्पर्श करने पर त् थ् द् आदि ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। यह ऊपर को मुड़कर कठोर तालु का स्पर्श करती हैं जिससे ट् ढ् ड् आदि ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। जिह्वानोक के वर्स पर अनेक आघात करने से लुटित 'र' स्वन

का सृजन होता है। जिह्वा द्वारा ऊपर उठकर कठोर तालु का स्पर्श करके झटके से नीचे आने पर ड़ ढ उक्षिप्त स्वनों का सृजन होता है।

हिन्दी में कवर्ग आदि पाँच वर्गों के अंतिम तीन (ग, घ, ङ ; ज, झ, ञ ; ड, ढ, ण आदि) स्वनों तथा य, र, ल, व, ह, ळ आदि के सृजन के समय स्वरतंत्रियाँ काँपती हैं। ख, घ, छ, झ, ट, ढ, आदि स्वनों के सृजन के समय श्वास-बल अधिक लगता है।

स्वर : परिभाषा तथा वर्गीकरण के आधार

ध्वनि एक प्रकार की शक्ति है जो दो वस्तुओं के टकराने से उत्पन्न होती है। दो वस्तुओं के टकराने से वायु में ध्वनि-लहरी या कंपन-लहरी (Sound wave) उत्पन्न होती है।



ध्वनि-लहरी (Sound wave)

मनुष्य जब भाषा को प्रयोग में लाता है, उस समय भी ध्वनियाँ सुनाई देती हैं। ये ध्वनियाँ तब उत्पन्न होती हैं जब वाग्यंत्र (**Larynx**) का एक अवयव दूसरे अवयव के साथ स्पर्श करता है। मानव-मुख से भाषा बोलने के लिए जिन ध्वनियों को प्रयोग में लाया जाता है, उन्हें स्वन (**Phone**) कहते हैं। भाषा-विज्ञान के जिस अंग के अंतर्गत इन स्वनों का वैज्ञानिक अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है, उसे स्वन-विज्ञान कहते हैं।

मानव-मुख से उच्चरित होने वाले ध्वनि-संकेत जिनका प्रयोग भाषा के संप्रेषण में होता है, उन्हें स्वन कहते हैं। इस परिभाषा के आधार पर स्वन के ये भेदक लक्षण निर्धारित किए जा सकते हैं :-

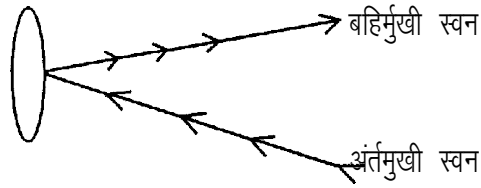
1. स्वनों का संबंध मानव-भाषा से है, मानवेतर भाषाओं से नहीं।
2. स्वनों का प्रयोग भाषा-संप्रेषण में होता है। जब स्वनों का व्यवस्थित प्रयोग किया जाता है, उनसे शब्द-प्रतीक बनते हैं। इन ध्वनि-प्रतीकों (शब्द-प्रतीकों) का व्यवस्थित प्रयोग भाषा है।
3. स्वन अर्थवान न होकर अर्थ-दयोक्त होते हैं। इसका अर्थ यह है कि स्वतंत्र रूप से स्वन का कोई अर्थ नहीं होता किंतु व्यवस्थित प्रयोग से इनसे ध्वनि-प्रतीकों (शब्द-प्रतीकों) का निर्माण होता है।
4. चींकने या गला साफ करने से भी ध्वनि या ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं किंतु उन्हें स्वन नहीं कहते हैं।
5. प्रत्येक भाषा में स्वनों की संख्या निश्चित तथा सीमित होती है किंतु इन निश्चित स्वनों से अनिश्चित शब्द-प्रतीकों को निर्मित किया जा सकता है। मानव-मुख से उच्चरित होने वाले स्वनों को विभिन्न आधारों पर दो भागों में (Concept of Duality) विभाजित करने के निम्नलिखित कई विधान हैं :-

1. बहिर्मुखी तथा अंतर्मुखी स्वन
2. अल्पप्राण तथा महाप्राण
3. घोष तथा अघोष
4. अनुनासिक तथा निरनुनासिक।

1. बहिर्मुखी तथा अंतर्मुखी स्वन

बहिर्मुखी वे स्वन हैं जिनके उच्चारण में वायु का विमोचन अंदर से बाहर होता है। दूसरे शब्दों में, जिन स्वनों का उच्चारण करते समय पहले साँस अंदर लेनी पड़ती है तथा उसका विमोचन स्वन के उच्चारण के साथ होता है, उन्हें बहिर्मुखी स्वन (Explosive Phone) कहते हैं। हिंदी के सभी स्वर स्वन तथा व्यंजन स्वन बहिर्मुखी स्वन हैं।

अंतर्मुखी स्वन वे हैं जिनका उच्चारण करते समय वायु का विमोचन बाहर से अंदर होता है। यह प्रक्रिया बहिर्मुखी स्वनों के विपरीत है। अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी स्वनों की विपरीत दशाओं को हम निम्नलिखित चित्र से समझा सकते हैं :-



2. अल्पप्राण तथा महाप्राण स्वन

जिन स्वनों का उच्चारण करते समय वायु में 'हकार' की ध्वनि नहीं गूँजती, उन्हें अल्प-प्राण कहते हैं। अल्प-प्राण का संबंध प्रायः व्यंजनों से है। हिंदी के अल्पप्राण व्यंजनों के उदाहरण इस प्रकार हैं :-

क् ग् च् ज् ट् ड् त् द् आदि।

जिन स्वनों के उच्चारण में वायु में 'हकार' की ध्वनि गूँजती है, उन्हें महाप्राण कहते हैं। उदा. - ख् घ् छ् झ् ढ् आदि। अल्पप्राण तथा महाप्राण का संबंध व्यंजन स्वनों से है।

3. घोष तथा अघोष स्वन

जिन स्वनों का उच्चारण करते समय स्वर-तंत्रियों (vocal bands) में कंपकंपी उत्पन्न होती है, उन्हें घोष स्वन या झंकार उत्पन्न करने वाले स्वन कहते हैं। प्रायः स्वर स्वन घोष होते हैं। व्यंजन स्वन घोष (सघोष) तथा अघोष दोनों होते हैं।

इसके विपरीत अघोष वे स्वन हैं जिनका उच्चारण करते समय स्वरतंत्रियों में कंपकंपी उत्पन्न नहीं होती है अर्थात् स्वनों का उच्चारण करते समय स्वरतंत्रियाँ तटस्थ रहती हैं। हिंदी में घोष तथा अघोष दोनों प्रकार के व्यंजन पाए जाते हैं। हिंदी के कुछ अघोष व्यंजन इस प्रकार हैं :-

क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ आदि

4. जिन स्वनों के उच्चारण में वायु का विमोचन मुख-विवर से होता है, उन्हें मौखिक स्वन (Oral phone) कहते हैं। हिंदी के सभी स्वर मौखिक हैं, जैसे, अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। हिंदी के कई मौखिक व्यंजन इस प्रकार हैं :- क, ख, ग, घ, च, छ, ज, झ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध आदि।

इसके विपरीत जिन स्वनों का उच्चारण करते समय वायु का विमोचन मुख विवर के साथ-साथ नासिका विवर (Nasal Cavity) से भी होता है, उन्हें नासिक्य स्वर कहते हैं। हिंदी के स्वर चिहनों में बिंदी (·) या चंद्रबिंदी (◌̣) लगाने से उनमें अनुनासिकता लाई जा सकती है। हिंदी में ये व्यंजन चिह्न नासिक्य व्यंजन हैं। ङ, ञ, ण, न, म आदि।

5. मानव-मुख से उच्चरित होने वाले स्वनों को वर्गीकृत करने का परंपरागत किंतु सशक्त तथा वैज्ञानिक आधार स्वरों तथा व्यंजनों में करने का है। स्वरों का उच्चारण करते समय वायु में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती। व्यंजनों का उच्चारण बाधा-सहित होता है। अब आगे स्वरों का विवेचन सविस्तार किया जाएगा।

स्वर: परिभाषा

“स्वर उन स्वनों को कहते हैं जो मुख-विवर में किसी प्रकार अवरुद्ध हुए बिना उच्चरित होते हैं। फेफड़ों से आने वाली वायु ओष्ठ और उससे आगे तक कहीं अवरुद्ध नहीं होती। इसको कहीं बहुत संकीर्ण मार्ग से नहीं निकलना पड़ता है। स्वर साधारणतया घोष ध्वनि होती है।” – ब्लाख और ट्रेगर

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर स्वर की निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं :-

1. स्वरों के उच्चारण में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती।
2. इनके उच्चारण में ओष्ठ कभी गोल तथा कभी खुले रहते हैं।
3. स्वरोच्चारण में जीभ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। दूसरे शब्दों में यह करण (articulator) की भूमिका निभाती है।
4. स्वर साधारणतया घोष होते हैं।
5. स्वरों में मुखरता होती है। ये दूर तक सुनाई देते हैं। व्यंजन स्वन मुखरित नहीं होते। वे घोष तथा अघोष दोनों हो सकते हैं।

स्वरोँ के वर्गीकरण के आधार

1. **मात्रा का आधार :-** मात्रा से अभिप्राय यह है कि स्वर के उच्चारण में कितना समय लगता है। मात्रा को ध्यान में रखकर स्वर चार प्रकार के माने जाते हैं :-

क. ह्रस्व ह्रस्व स्वर

ख. ह्रस्व स्वर

ग. दीर्घ स्वर

घ. प्लुत स्वर। अब आगे इनका विवेचन किया जाएगा :-

ह्रस्व ह्रस्व स्वर:- ये वे स्वर हैं जिनके उच्चारण में ह्रस्व स्वर से कम समय अर्थात् आधी मात्रा का समय लगे। अवधी में 'रामु' के 'उ' का उच्चारण जिस प्रकार किया जाता है, वह आधी मात्रा का समय माना जा सकता है।

ह्रस्व स्वर :- मात्रा से अभिप्राय है, स्वरों में लगे जाने वाले समय से। जिस स्वर के उच्चारण में एक मात्रा का समय लगता है, उसे ह्रस्व स्वर कहते हैं। इसको ध्यान में रखकर हिंदी के ह्रस्व स्वर इस प्रकार हैं :- अ, इ, उ।

दीर्घ स्वर :- ये वे स्वर हैं जिनके उच्चारण में एक मात्रा से अधिक अर्थात् दो मात्राओं का समय लगता है। हिंदी के दीर्घ स्वर ये हैं :- आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ।

प्लुत स्वर :- ये वे स्वर हैं जिनके उच्चारण में दीर्घ स्वर की अपेक्षा अधिक समय लगे। प्लुत स्वर में आवश्यकतानुसार तीन या चार मात्राओं या और अधिक समय लग सकता है। गायन में मात्राओं की दीर्घता को इस प्रकार दिखाया जाता है :- जाऽ, जाऽऽ.....आदि।

2. **ओष्ठों की आकृति :-** स्वरोच्चारण में ओष्ठों की आकृति कभी गोल तथा कभी खुली रहती है। जिन स्वरों के उच्चारण में ओष्ठों की स्थिति गोल होती है, उन्हें गोलीकृत (Rounded) स्वर कहते हैं। अंग्रेजी का 'O' या हिंदी का 'ओ' गोलीकृत स्वरों के उपयुक्त उदाहरण हैं। जिन स्वरों के उच्चारण में होंठों की स्थिति खुली रहती है, उन्हें अगोलीकृत स्वर (unrounded) कहते हैं। हिंदी में अगोलीकृत स्वरों के उदाहरण इस प्रकार हैं :- आ, इ, ई, ए, ऐ आदि।

3. **जीभ के विभिन्न भागों की सक्रियता :-** स्वर के उच्चारण में जीभ का कौन-सा भाग करण (Articulator) का कार्य करता है, उसके आधार पर भी स्वरों को वर्गीकृत किया जाता है। जीभ के विभिन्न भागों के सक्रिय होने के आधार पर स्वर तीन प्रकार के माने गए हैं :- अग्र स्वर, मध्य स्वर तथा पश्च स्वर।

जिस स्वर के उच्चारण में जीभ का अग्रभाग सक्रिय होता है अर्थात् जीभ का अग्र भाग करण का कार्य करता है, उसे अग्र स्वर कहते हैं। हिंदी के अग्र स्वर इस प्रकार हैं :- इ, ई, ए, ऐ। जिन स्वरों के उच्चारण में जीभ का मध्य भाग करण का कार्य करता है, उन्हें मध्य स्वर (Mid vowel) कहते हैं। /अ/ हिंदी का मध्य स्वर है। इसी प्रकार जीभ के पश्च भाग से सक्रिय होने वाले स्वरों को पश्च स्वर (Back vowel) कहते हैं। उ, ऊ, ओ, औ, आ हिंदी के पश्च स्वर हैं।

4. मुख विवर के संकीर्ण अथवा विकीर्ण होने के आधार पर :-

स्वरों के उच्चारण में कभी मुख विवर खुला रहता है या कभी अधखुला। इसी प्रकार यह कभी संकीर्ण होता है, तो कभी अर्द्ध संकीर्ण। वस्तुतः जीभ की विभिन्न ऊँचाइयों के आधार पर मुख-विवर कभी संकीर्ण तथा कभी विकीर्ण होता है। मुख-विवर की संकीर्णता-विकीर्णता के आधार पर स्वरों को चार भागों में वर्गीकृत किया गया है :- संकीर्ण, अर्द्ध संकीर्ण, अर्द्ध विकीर्ण। जीभ की विभिन्न ऊँचाइयों तथा मुख-विवर के संकीर्ण अथवा विकीर्ण होने के आधार पर हिंदी के स्वरों का वर्गीकरण निम्नलिखित चित्र से समझा जा सकता है:-

	संवृत	अग्र	मध्य	पश्च	
		* ई			* ऊ
		* इ			* उ
	अर्द्ध-संवृत	ए *			* ओ
	अर्द्ध-विवृत		ऐ	अ	* औ
					* औ
	विवृत				* आ

संवृत अग्र स्वर (हिंदी के संदर्भ में) इ ई

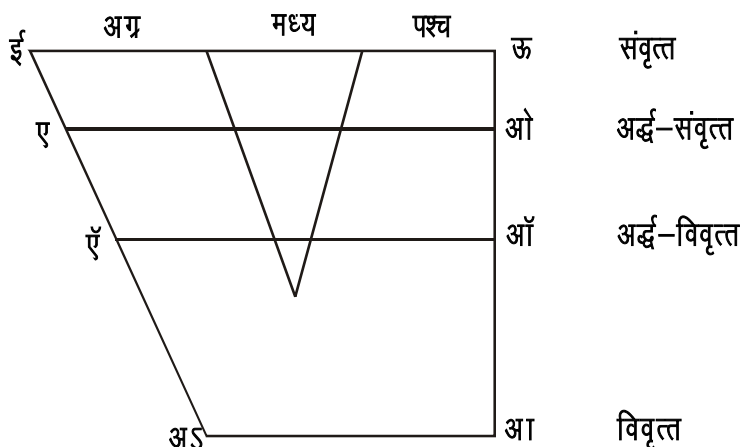
अर्द्ध-संवृत ए ओ

अर्द्ध-विवृत ऐ अ औ

जैसे नामों से जाना जाता है।

मानस्वरों के अध्ययन का कार्य सर्वप्रथम जान वेलिस ने किया था। हेलबैग ने 1780 के आसपास उच्चारण स्थानों के आधार पर एक स्वर त्रिभुज बनाया था। इसी स्वर त्रिभुज को बाद में डेनियल जोन्स (Daniel Jones) ने स्वर चतुर्भुज के रूप में प्रस्तुत किया। जोन्स द्वारा प्रस्तुत किया हुआ चतुर्भुज वर्तमान काल में सबसे अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय हुआ।

मानस्वरों का संबंध किसी भाषा-विशेष से नहीं है। इन स्वरों की अवधारणा काल्पनिक है तथा ये स्वरों के स्थान के निर्णय के लिए निश्चित मानदंड या मापक हैं। जिह्वा के विभिन्न भागों को ध्यान में रखकर तथा इनकी विभिन्न ऊँचाइयों के आधार पर इनके भेद किए गए हैं तथा इनकी संख्या आठ निश्चित की गई है। किसी भी भाषा के स्वर-निर्धारण में मान-स्वर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। निम्नलिखित स्वर-चतुर्भुज से इनको सहज ही समझा जा सकता है :-



प्राचीन स्वर तथा अर्वाचीन स्वर

मानव-मुख से उच्चरित होने वाली ध्वनियों (स्वरों) को वर्गीकृत करने की प्रथा बहुत प्राचीन है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार स्वरों को दो वर्गों में बाँटा जाता है : स्वर तथा व्यंजन। स्वर वे माने गए हैं जिनके उच्चारण में किसी अन्य ध्वनि की सहायता नहीं लेनी पड़ती है। 'स्वयं राजनते ते स्वराः' यह उक्ति इसी कथन की पुष्टि करती है। स्वर उदात्त माने गए हैं। भाषा के संदर्भ में कहेंगे कि स्वरों में मुखरता (Sonority) होती है। इसके विपरीत व्यंजनों में मुखरता नहीं होती है।

संस्कृत परंपरा के अनुसार स्वरों को वर्गीकृत करने के जो प्रयास किए गए हैं, उसमें वर्णों को ध्यान में रखा गया है। उदाहरणार्थ /इ/ के साथ /ई/ वर्ण रखने का आधार यह है कि इनमें ध्वन्यात्मक साम्य के साथ रूपात्मक साम्य भी है किंतु प्रयोग के स्तर पर इनमें व्यतिरेक पाया जाता है। यहाँ यह बात

ध्यान में रखनी होगी कि स्वरों का यह विवेचन स्वर-वर्णों की प्रधानता या भाषा के लिखित रूप को ध्यान में रखकर किया गया है।

स्वरों का जो अर्वाचीन वर्गीकरण किया गया है, उसके पीछे वैज्ञानिक आधार है। डेनियल जोन्स ने भाषा की वैज्ञानिकता को ध्यान में रखकर मान स्वरों का निर्धारण किया जो किसी भी भाषा में प्राप्त स्वर-व्यवस्था को निर्धारित करने में हमारी सहायता करता है। स्वर चतुर्भुज की सहायता से संसार की किसी भी भाषा से स्वरों की पहचान की जा सकती है। इसी आधार पर मुख की संकीर्णता-विकीर्णता तथा जिह्वा की विभिन्न ऊँचाई-निचाई को ध्यान में रखकर स्वरों को चार वर्गों (संवृत्त, विवृत, अर्ध संवृत्त तथा अर्ध-विवृत) में बाँटा गया है।

स्वर-वर्गीकरण की अर्वाचीन अमेरिकी पद्धति भी ध्यान देने योग्य है। यह पद्धति यूरोप में प्रचलित रही है। जीभ की ऊँचाई-निचाई या उसके अग्र, पश्च, मध्य के आधार पर अमेरिका में और भेद किए गए हैं। ब्लॉक ओर ट्रैगर ने स्वरों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है – उच्च, निम्नतर उच्च, उच्चतर मध्य, मध्य, निम्नतर मध्य, उच्चतर निम्न तथा निम्न। इसको निम्नलिखित चित्र से समझा जा सकता है।

अग्र		मध्य		पश्च	
अवृत्तामुखी	वृत्तामुखी	अवृत्तामुखी	वृत्तामुखी	अवृत्तामुखी	वृत्तामुखी
i	ü=y	ɪ	ʊ	ī=ɪ	u
ɪ	ʊ	ɪ	ʊ	ɪ	ʊ
e	ö=ø	ɛ	o	ē=ɛ	o
ɛ	ō	é=ɛ	ō	ē	o
ɛ	ö=œ	ɛ	o	ē=ɛ	o
æ	ō	æ	ō	æ	ō
a	ö	a	o	ā=a	o

स्वर-स्वनों का प्राचीन वर्गीकरण

मानव-मुख से उच्चरित होने वाले स्वरों को दो भागों में विभाजित करने की प्रथा बहुत पुरानी है। ये दो भाग हैं, स्वर तथा व्यंजन। परंपरागत व्याकरण के अनुसार स्वर की परिभाषा इस प्रकार दी गई है— “स्वर वे हैं जो किसी दूसरी ध्वनि की सहायता के बिना बोले जाते हैं।” इसके विपरीत व्यंजन वे हैं जो स्वरों

की सहायता से बोले जाते हैं। ये परिभाषाएं भारतीय दृष्टिकोण से भले ही सही हों तथा भारतीय आर्यभाषाओं के संदर्भ में उचित हों किंतु आधुनिक भाषा-विज्ञान के अनुसार ये परिभाषाएं अब मान्य नहीं हैं।

व्यंजन : परिभाषा तथा वर्गीकरण

मानव-मुख से उच्चरित ध्वनि-संकेतों को सामान्यतः दो वर्गों में बाँटने की प्रथा है। इन वर्गों के नाम हैं, स्वर तथा व्यंजन। स्वरों का उच्चारण बाधा-रहित होता है। जीभ की विभिन्न ऊँचाईयों तथा मुख-विवर की संकीर्णता अथवा विकीर्णता के कारण स्वर कहीं संवृत होते हैं तो कभी विवृत। स्वर प्रायः घोष होते हैं। स्वरों के विपरीत व्यंजनों का उच्चारण बाधा-सहित होता है। व्यंजन के उच्चारण में फेफड़ों से आने वाली वायु स्वरतंत्री या मुख-मार्ग में कहीं पूर्णरूपेण रोकी जाती है या अत्यंत संकुचित मार्ग से निकलती है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार – “व्यंजन वह अघोष या सघोष ध्वनि है जिसके उच्चारण में हवा अबाध गति से नहीं निकलने पाती....।” बाबूराम सक्सेना के शब्दों में...“व्यंजन वह अघोष या सघोष ध्वनि है जिसके मुख-विवर से निकलने में पूर्ण रूप से अथवा कुछ मात्रा में बाधा उत्पन्न होती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर स्वर तथा व्यंजन का अंतर इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :-

1. स्वरोच्चारण में वायु का विमोचन अबाध गति से होता है। इसके विपरीत व्यंजनों में वायु का विमोचन सबाध गति से होता है।
2. स्वरोच्चारण में मुखरता (**sonority**) होती है अर्थात् इसकी ध्वनि दूर तक अनुगूँज करती है। इसके विपरीत व्यंजन मुखरित नहीं होते।
3. स्वर प्रायः सघोष होते हैं। दूसरी ओर व्यंजन मुखरित नहीं होते हैं।
4. स्वरों की चर्चा करते समय प्राणत्व की बात नहीं आती, जबकि व्यंजन स्वरों का वर्गीकरण प्राणत्व (अल्पप्राण तथा महाप्राण) के आधार पर किया जाता है।

व्यंजन : वर्गीकरण के आधार

स्वन-विज्ञान में व्यंजनों का वर्गीकरण निम्न आधारों पर किया जाता है :-

1. स्थान के आधार पर
2. प्रयत्न के आधार पर
3. घोषत्व के आधार पर
4. प्राणत्व के आधार पर

स्थान का आधार

व्यंजन के उच्चारण में किसी विशिष्ट स्थान का योग होता है, वह स्थान उस व्यंजन के स्थान का

आधार माना जाता है। उदाहरणार्थ, /प/ व्यंजन का उच्चारण-स्थान ओठ है या /त्/ का उच्चारण स्थान दाँत है। अतः कहेंगे कि /प/ ओष्ठ्य है तथा /त्/ दंत्य है।

प्रयत्न का आधार

किसी व्यंजन को उच्चरित करने के लिए उच्चारण अवयव किस प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं, उन चेष्टाओं या गतिविधियों को प्रयत्न कहते हैं। उदाहरणार्थ /प/ को उच्चरित करने के लिए ऊपरी होंठ तथा निचला होंठ आपस में मिलते हैं। इसे प्रयत्न कहते हैं।

घोषत्व का आधार

जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपकंपी नहीं होती, उन्हें अघोष व्यंजन कहते हैं। उदाहरण:- क् ख् च् छ् ट् थ् आदि। जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्वरतंत्रियों में कंपन होता है, अर्थात् वे झंकार की ध्वनि उत्पन्न करते हैं, उन्हें घोष (सघोष) व्यंजन कहते हैं। उदाहरण :- ग् घ् ज् झ् ङ् ढ् आदि।

प्राणत्व का आधार

जिन व्यंजनों के उच्चारण में वायु में हकार की ध्वनि नहीं गूँजती, उन्हें अल्पप्राण व्यंजन कहते हैं। दूसरी ओर महाप्राण व्यंजनों में हकार की ध्वनि गूँजती है। उदाहरण :-

अल्पप्राण :- क् ग् च् ज् ट् ङ्आदि

महाप्राण :- ख् घ् छ् झ् ढ्आदि

स्थान का आधार :- स्थान के आधार पर व्यंजन-स्वनों का वर्गीकरण निम्नलिखित विभागों में किया जाता है :-

1. **द्वयोष्ठ्य :-** जब व्यंजनों के उच्चारण में भीतर से आती हुई साँस में दोनों ओठों के द्वारा विकार लाया जाता है, तब उन स्वनों को ओष्ठ्य व्यंजन कहते हैं। उदाहरण :- /प/ /फ/
2. **दंत्योष्ठ्य :-** जब विकार नीचे के ओठ और ऊपर के दाँतों से उत्पन्न होता है, तब उन स्वनों को दंत्योष्ठ्य व्यंजन कहते हैं। उदाहरण /फ/ /एफ/
3. **दंत्य :-** जिन व्यंजन ध्वनियों के उच्चारण में दाँतों का योग होता है, उन्हें दंत्य व्यंजन कहते हैं। उदाहरण :- /त्/ /थ्/ /द्/ /ध्/
4. **वर्त्स्य :-** वर्त्स भाग से उच्चरित स्वन को वर्त्स्य व्यंजन कहते हैं। वर्त्स भाग को छूने से पता चलता है कि यह भाग खुरदुरा (कड़ा) होता है। उदाहरण :- /न्/ /ल्/ /र्/
5. **तालव्य :-** इसको कठोर तालु भी कहते हैं। जिह्वा नोक या जिह्वाग्र भाग से इन ध्वनियों के उच्चारण में सहायता ली जाती है। उदाहरण :- /च्/ /छ्/ /ज्/ /झ्/
6. **मूर्धन्य :-** इनके उच्चारण में जिह्वा मुड़कर ऊपर की ओर मूर्धा स्थान को छूती है। /ट्/ /ठ्/ /ड्/ /ढ्/ सभी मूर्धन्य व्यंजन हैं।

7. **कंद्य** :- ये ध्वनियां जीभ के पिछले भाग के द्वारा कोमल तालु को छूने पर उत्पन्न होती है। /क/ /ख/ /ग/ /घ/ कंद्य स्वन हैं।
8. **जिह्वामूलीय** :- ये स्वन जिह्वामूल या जिह्वापश्च भाग से उत्पन्न होती है। उदाहरण :- /क/ /ख/ /ग/
9. **स्वरयंत्रमुखी** :- स्वरयंत्रमुखी उन ध्वनियों को कहते हैं जो स्वरतंत्री के मुख से (ग्लोटिस Glottis) से उच्चरित होती हैं। उदाहरण :- /ह/

प्रयत्न का आधार

प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जाता है :-

1. **स्पर्श** :- उन स्वनों को कहते हैं जिनके उच्चारण में वाग्यंत्र के दो अवयवों का परस्पर स्पर्श होता है। स्पर्श में वाग्यंत्र के दोनों अवयव परस्पर स्पर्श के द्वारा अंदर से आने वाली वायु को रोक देते हैं और फिर उस वायु को जाने देते हैं। /प/ /फ/ /ब/ /भ/ स्पर्श व्यंजन हैं।
2. **स्पर्श-संघर्षी** :- यहाँ मुखद्वार को बिल्कुल बंद करके रगड़ के साथ खोलना पड़ता है /च्/ /छ/ /ज्/ /झ/ स्पर्श-संघर्षी व्यंजन हैं।
3. **अनुनासिक** :- नासिक्य व्यंजनों के उच्चारण में मुख-द्वार को बिल्कुल बंद करके खोला जाता है, किंतु साथ ही वायु का विमोचन नासिका विवर से भी होता है। उदा० /ङ्/ /ञ/ /ण्/ /न्/
4. **पार्श्विक** :- इन व्यंजन-ध्वनियों के उच्चारण में मुख-द्वार को बीच में बंद कर दिया जाता है, किंतु दोनों तरफ रास्ता खुला रहता है। उदाहरण :- /ल्/
5. **लुंठित** :- लुंठित व्यंजन-स्वन में मुखद्वार को जीभ की नोक से बहुत जल्द-जल्द बंद करके दो-तीन बार खोला जाता है। उदाहरण :- /र्/
6. **उत्क्षिप्त** :- उत्क्षिप्त वह व्यंजन-स्वन है जिसके उच्चारण में जीभ की नोक उल्टा कर तालु को कुछ दूर तक छू कर मुख द्वार को झटके के साथ खोला जाता है। उदाहरण /ङ्/ /ढ्/
7. **संघर्षी** :- इन ध्वनियों के उच्चारण में मुख-द्वार को इतना संकरा किया जाता है कि हवा रगड़ खाकर निकले। उदाहरण :- /फ्/ /एफ्/

अर्द्ध-स्वर

अर्द्ध-स्वर न पूर्णरूपेण स्वर हैं, न पूर्ण रूप से व्यंजनों की तरह स्वराघात ही वहन कर सकते हैं। इनके उच्चारण में मुख-द्वार को संकरा कर दिया जाता है कि रगड़ खाकर हवा बाहर निकलती है। उदाहरण :- /व्/ /य्/

प्रयत्न के आधार पर	व्यंजनो का वर्गीकरण								
	1	2	3	4	5	6	7	8	9
स्थान के आधार पर	द्वयोष्ठ्य	दत्योष्ठ्य	दत्य	वत्स्य	तालव्य	मूर्धन्य	कठ्य	जिह्वामूलीय	स्वरयंत्रामुखी
अल्प	प	ख	त्	ख	ख	ट	क्	क्	□
स्पर्श अघोष	फ	ख	थ	ख	ख	ट	ख	ख	ख
महा	क	ख	द	ख	ख	ड	ग	ग	ख
अल्प	भ	ख	घ	ख	ख	ढ	घ		ख
महा	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
स्पर्श-अल्प	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
अघोष	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
संघर्षी महा	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
अघोष अल्प	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
महा	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
अनुनासिकअल्प	म्	ख	ख	न	ञ	ण	ञ	ख	ख
(घोष) महा	(न्ह)	ख	ख	(रह)	ख	ख	ख	ख	ख
पार्श्विकअल्प	ख	ख	ख	ल	ख	ख	ख	ख	ख
(घोष) महा	ख	ख	ख	(लह)	ख	ख	ख	ख	ख
द्विधित अल्प	ख	ख	ख	र	ख	ख	ख	ख	ख
(घोष) महा	ख	ख	ख	(रह)	ख	ख	ख	ख	ख
उत्प्लित अल्प	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
(घोष) महा	ख	ख	ख	ख	श	ख	ख	ख	ख
अघोष अल्प	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
संघर्षी महा	ख	फ्	ख	ख	ख	ख	ख	ख	व्
सघोष अल्प	ख	ख	ख	स	ख	ख	ख	ख	ख
महा	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख	ख
अर्ध-स्वर	व्	ख	ख	ख	य	ख	ख	ख	ख

टिप्पणी :- कोष्ठक में रखी गई ध्वनियों के लिए कोई स्वतंत्र लिपि-चिन्ह नहीं है।

स्वानिमी (Phonemics)

स्वानिमी की परिभाषा

स्वानिमी/स्वनिम विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें स्वनिमों और उनसे संबंधित पूरी व्यवस्था पर विचार किया जाता है।

स्वनिम (Phoneme) की परिभाषा और संस्वन (Allophone)

देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार 'मिलती-जुलती ऐसी ध्वनियों या ध्वनिगुणों का भावानयन स्वनिम कहलाता है, जो व्यवहार की दृष्टि से किसी विशेष भाषा में एक ही इकाई बनाएँ।'

'यदि हम किसी एक ध्वनि का उच्चारण दस बार करते हैं तो वस्तुतः यह उच्चारण दस भिन्न-भिन्न ध्वनियों का होता है। किन्तु यह भिन्नता इतनी अल्प होती है कि हम उसे पकड़ नहीं पाते।' उदाहरण के रूप में : यदि हम 'उलटा', 'ले' तथा 'ला' शब्दों में आई 'ल' ध्वनि के उच्चारण पर ध्यान दें तो हम पाएँगे कि 'उलटा' शब्द के उच्चारण में जिह्वा की नोक को ऊपर की ओर उलटाना पड़ता है, 'ले' शब्द में आए 'ल' के उच्चारण में जिह्वा वर्स की ओर थोड़ा आगे खिसक जाती है और 'ला' शब्द में आए 'ल' के उच्चारण में थोड़ा और आगे की ओर बढ़ जाती है। 'उलटा', 'ले' तथा 'ला' में आए 'ल' के उच्चारण स्थान में सूक्ष्म भेद होते हुए भी हम एक सामान्य ध्वनि 'ल' को ही ग्रहण करते हैं। सामान्य ध्वनि 'ल' को हम ल¹, 'उलटा' में आई 'ल' ध्वनि को ल², 'ले' में आए 'ल' को ल³ और 'ला' में आए 'ल' को ल⁴ के रूप में लिख सकते हैं। ल¹, ल², ल³ और ल⁴ आपस में मिलती जुलती ध्वनियाँ हैं। ल², ल³ और ल⁴ के उच्चारण स्थान की सूक्ष्म भिन्नता के बारे में हम बता सकते हैं, इनके अलग-अलग उच्चारण स्थान के बारे में बता सकते हैं, इसलिए हम कहते हैं कि इन तीनों 'ल' की सत्ता भौतिक है। ये तीनों भिन्न हैं, लेकिन हम इन्हें सामान्य ल के रूप में ग्रहण करते हैं, जिसे हमने ल¹ के रूप में लिखा है। इस ल¹ की सत्ता भौतिक नहीं है, इसकी सत्ता मानसिक है। ल², ल³ और ल⁴ जिस-जिस क्षेत्र से उच्चरित हुए, अगर उन्हें मिला कर एक विस्तृत क्षेत्र की कल्पना की जाए तो उस क्षेत्र में ऐसे असंख्य बिन्दु होंगे जहाँ से 'ल' ध्वनि के उच्चारण की संभावना हो सकती है। अर्थात् एक क्षेत्र या परिधि में असंख्य 'ल' उच्चरित हो सकते हैं। उच्चरित हो सकने वाली सभी 'ल' ध्वनियों का क्षेत्र हमारे मस्तिष्क में नहीं रह सकता। सुनने में हम सामान्य 'ल' ध्वनि का भावानयन करते हैं। इसीलिए हमने परिभाषा में यह कहा कि मिलती-जुलती ध्वनियों का भावानयन स्वनिम कहलाता है। स्वनिम का संबंध भाषा विशेष से होता। हिन्दी के 'क' और अंग्रेजी के 'K' को हम एक ही स्वनिम नहीं मान सकते।

ल^१, ल^२ और ल^३... आपस में मिलती-जुलती ध्वनियां हैं। इन ध्वनियों में से किसी एक ध्वनि को प्रतिनिधि मान लिया जाता है। यह प्रतिनिधि 'ल' स्वनिम है और शेष ध्वनियों को इसके संस्वन कहा जाता है। मान लीजिए हम ल^२ को प्रतिनिधि मान लेते हैं, ऐसी स्थिति में ल^१, ल^३... आदि ल^२ के संस्वन या उपस्वन हैं। मिलती-जुलती ध्वनियां कहने का तात्पर्य यह है कि इनमें समानता होती है। यह समानता स्थान या प्रयत्न के आधार पर होती है।

स्वनिम का स्वरूप

स्वनिम के स्वरूप को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। ब्लूम फील्ड और डेनियल जोन्स इसे भौतिक इकाई मानते हैं। कुर्तिन तथा प्राग स्कूल के कुछ भाषाशास्त्री इसे मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं। प्रो. ट्वाडेल स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई मानते हैं। कुछ विद्वान इसे बीजगणितीय इकाई मानते हैं। वस्तुतः स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई/भावानीत (Abstractional Fictitious unit) इकाई मानना ही उपयुक्त है क्योंकि जिन मिलती-जुलती ध्वनियों को हम स्वनिम के रूप में ग्रहण करते हैं वह ग्रहण भावानयन के रूप में होता है।

स्वनिम और संस्वन में अन्तर

स्वनिम	संस्वन
1. स्वनिम किसी भाषा की समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि एक ही ध्वनि अनेक प्रकार से उच्चरित होती है तो स्वनिम एक ही होगा।	1. संस्वन समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। यदि एक ही ध्वनि अनेक प्रकार से उच्चरित हो तो स्वनिम तो एक ही होगा, परन्तु संस्वन अनेक हो सकते हैं।
2. स्वनिम की सत्ता मानसिक होती है।	2. संस्वन की सत्ता भौतिक होती है।
3. यदि स्वनिम और संस्वन को एक परिवार माना जाए तो स्वनिम को परिवार का मुखिया कहा जाएगा।	3. यदि स्वनिम और संस्वन को परिवार माना जाए तो संस्वनों को परिवार का सदस्य माना जाएगा।

- | | |
|---|--|
| <p>4. स्वनिम अर्थ भेदक होते हैं। जैसे 'आल' के पूर्व 'क' स्वनिम रख दिया जाए तो बनेगा 'काल'। यदि 'आल' के पहले 'ग' स्वनिम रख दिया जाए तो शब्द बनेगा 'गाल'। काल और गाल के अर्थ में अन्तर है। यह अन्तर 'आल' के पूर्व 'क' या 'ग' स्वनिम के आने के कारण है।</p> <p>5. किसी भी भाषा में स्वनिम महत्वपूर्ण होते हैं।</p> <p>6. स्वनिम व्यतिरेकी वितरण में आते हैं।</p> <p>7. स्वनिम अननुमेय होते हैं। अर्थात् यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि कौन-सा स्वनिम कहां आएगा।</p> | <p>4. संस्वन अर्थ भेदक नहीं होते।</p> <p>5. संस्वन महत्वपूर्ण नहीं होते।</p> <p>6. संस्वन परिपूरक वितरण में आते हैं।</p> <p>7. संस्वन अनुमेय होते हैं।</p> |
|---|--|
- स्वनिम के भेद

स्वनिम के दो भेद होते हैं— खंड्य (Segmental) और अखंड्य (Supra segmental).

खंड्य स्वनिम – जिन ध्वनियों को अलग-अलग खंडित किया जा सकता है और उनका उच्चारण स्वतंत्र रूप में हो सकता है, उन्हें खंड्य स्वनिम कहते हैं, जैसे 'कमल' शब्द में 'क', 'म' और 'ल' का स्वतंत्र उच्चारण किया जा सकता है और 'कमल' शब्द के 'क', 'म' और 'ल' के रूप में अलग-अलग खंड किए जा सकते हैं।

खंड्य स्वनिम दो प्रकार के होते हैं – स्वर स्वनिम : अ, इ, उ आदि।

व्यंजन स्वनिम : क, च, प, ट, त आदि।

अखंड्य स्वनिम – जिन स्वनिमों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण न हो सके और न ही अलग-अलग खंडित किया जा सके उन्हें अखंड्य स्वनिम कहा जाता है। इसके पांच भेद हैं :

1. **बलाघात** : बलाघात फेफड़ों से बाहर आने वाली हवा की तीव्रता पर निर्भर होता है। बलाघात में किसी एक वर्ण या शब्द को बल सहित उच्चरित किया जाता है। उदाहरण :

1. **रोको** मत जाने दो।
2. **रोको मत** जाने दो।

वाक्य संख्या एक में अगर बल 'रोको' शब्द पर होगा तो इसका अर्थ होगा, रोक लीजिए, जाने मत दीजिए। वाक्य संख्या दो में अगर बल 'रोको मत' पर होगा तो अर्थ होगा : मत रोकिए, जाने दीजिए।

2. **अनुतान (Pitch या Tone)** : अनुतान स्वरतंत्रियों पर पड़ने वाले तनाव पर निर्भर होती है। यह शब्द और वाक्य दोनों स्तरों पर मिलती है।

उदाहरण :

1. वह पास हो गई।
2. वह पास हो गई!
3. वह पास हो गई?

वाक्य संख्या एक को अगर सामान्य रूप से उच्चरित करेंगे तो पास होने की सूचना प्रेषित होगी। इसी वाक्य को टोन बदल कर उच्चरित करने से आश्चर्य या प्रश्न का भाव भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

3. **दीर्घता (Length)** : इसे मात्रा भी कहा जाता है। स्वरों में मात्रा के भेद के कारण अर्थ में भेद उत्पन्न हो जाता है। जैसे :

1. मुझसे पहिया जितना चला, उतना चला दिया।
2. अब मैं चला।

वाक्य संख्या एक में 'चला' शब्द के 'आ' के उच्चारण में हवा की अधिक मात्रा के कारण 'चला' शब्द का अर्थ हुआ घुमाना या गति में लाना। दूसरे वाक्य में 'चला' का अर्थ है जाने की क्रिया।

'बला' और 'बल्ला' शब्द में भिन्न अर्थ का कारण 'ल' व्यंजन की दीर्घता है।

4. **अनुनासिकता (Nasalisation)** : अगर हम निम्नलिखित दो वाक्यों के अर्थ की ओर ध्यान दे:
 1. मैंने अपनी सास को देखा।
 2. तो मेरी साँस ही रुक गई।

तो हम पाएँगे कि वाक्य संख्या एक में 'सास' का अर्थ है पति की मां। दूसरे वाक्य में 'सास' शब्द में 'आ' के अनुनासिक होने के कारण अर्थ में बदलाव आ गया है।

5. **संगम (Juncture)** : शब्दों और वाक्यों की कुछ ध्वनियों के बीच यति का प्रयोग करने से अर्थ में अंतर आ जाता है, जैसे :

1. डाक्टर ने मुझे पीली दवाई दी। (पीला रंग)
2. मैंने वह दवाई पी ली। (पीने की क्रिया)

स्वनिम का भेद केन्द्रीय स्वनिम और परिधीय स्वनिम के रूप में भी किया जाता है। जो स्वनिम अर्थ भेदक और व्यतिरेक वितरण में होते हैं, उन्हें केन्द्रीय (**Core**) या मुख्य स्वनिम कहते हैं और जिनका प्रयोग कम लोगों द्वारा होता है और जो सीमित शब्दों में आते हैं या सीमित परिस्थितियों में प्रयुक्त होते हैं, उन्हें परिधीय (**Peripheral**) या गौण स्वनिम कहा जाता है। जैसे क, ख, ग, ज, फ।

स्वनिम विश्लेषण पद्धति

सामग्री संकलन – किसी भी भाषा-बोली के अध्ययन के लिए सामग्री संकलित की जाती है। भाषा के पुराने शब्दों का संग्रह प्राचीन साहित्य से किया जाता है, जबकि जीवित भाषा-बोली के शब्दों के विश्लेषण के लिए उस भाषा के बोलने वाले व्यक्ति-व्यक्तियों से सुनकर शब्दों या वाक्यों का संकलन किया जाता है।

सूचक – अध्ययन की जाने वाली भाषा को जिस व्यक्ति से सुना जाता है उसे सूचक कहते हैं। सूचक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसकी मातृभाषा अध्ययन की जाने वाली भाषा हो या वह उस भाषा का अच्छा ज्ञाता हो और भाषाशास्त्री से संप्रेषण के लिए भी उचित भाषा का ज्ञान उसे हो।

ध्वन्यात्मक लेखन – सामग्री संकलन के समय जिन शब्दों को सूचक से सुना जाता है उन्हें ध्वन्यात्मक लेखन (Phonetic Transcription) की सूक्ष्म प्रतिलेखन की पद्धति से लिखा जाता है। लिखते समय यह भी लिखना पड़ता है कि कौन-सी ध्वनि स्वर है और कौन-सी व्यंजन। अगर स्वर है तो किस प्रकार का स्वर है : संवृत है, विवृत है, अग्र है, मध्य है या पश्च है, गोली कृत या अगोलीकृत है, आदि। यदि व्यंजन है तो किस प्रकार का है : स्थान भेद से ओष्ठ्य है, दन्त्य है, वत्स्य है, आदि, प्रयत्न भेद से स्पर्श है, स्पर्श-संघर्षी है, पार्श्विक है आदि। स्वरतंत्रियों के आधार पर घोष है या अघोष, प्राणत्व के आधार पर अल्पप्राण है या महाप्राण, मात्रा के आधार पर ह्रस्व है या दीर्घ।

स्वनिमों को छांटना (विश्लेषण)

स्वनिमों के विश्लेषण के लिए निम्नलिखित विधि अपनाई जाती है :

(क) **संकलित सामग्री को क्रमबद्ध लगाना** – प्रत्येक ध्वनि से आरंभ होने वाले शब्दों की अलग से सूची बनाई जाती है और यह भी नोट किया जाता है कि क्या कोई ध्वनि किसी विशेष ध्वनि के साथ ही आती है। इस प्रकार की ध्वनि के संबंध में यह भी नोट किया जाता है कि वह शब्द के आरंभ में आती है, मध्य में या अंत में या तीनों ही स्थलों में। आरंभ, मध्य और अंत में आने वाली प्रत्येक ध्वनि की सूची बनाई जाती है।

(ख) **तुलनात्मक अध्ययन** – सूचियां बनाने के पश्चात तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। समान परिस्थिति में आने वाली ध्वनियों को अलग किया जाता है। ऐसी ध्वनियों वाले शब्दों के निम्नतम युग्म अलग किए जाते हैं। निम्नतम युग्म से तात्पर्य है जिन दो शब्दों की ध्वनियों में केवल एक ही ध्वनि का अन्तर हो जैसे 'काम' और 'राम' में केवल 'क' या 'र' का अन्तर है।

(ग) **स्वनिमों का वर्गीकरण** – वितरण के आधार पर यह देखा जाता है कि कौन-सी ध्वनि स्वनिम है और कौन-सी संस्वन।

1. व्यतिरेकी वितरण – व्यतिरेक का अर्थ है विरोध। जिस परिस्थिति में एक ध्वनि आती है, अगर उसी परिस्थिति में दूसरी ध्वनि आकर अर्थ भेद कर दे तो इस प्रकार के वितरण को व्यतिरेकी वितरण कहा जाता है। जैसे 'पल' और 'फल' में 'प' और 'फ' दोनों एक ही परिस्थिति में (अर्थात् 'ल' ध्वनि के पूर्व) आए हैं। इस परिस्थिति में आ कर उन्होंने अर्थ भेद कर दिया है। एक परिस्थिति में आने और अर्थ भेद कर पाने के कारण 'प' और 'फ' को अलग-अलग स्वनिम माना जा सकता है। यह देखना भी अपेक्षित है कि समान परिस्थिति में 'प' और 'फ' ध्वनियां शब्द के मध्य और/या अन्त में आकर अर्थ भेद कर पाती हैं या नहीं।

2. पूरक या परिपूरक वितरण – जिस परिस्थिति में एक ध्वनि आती है उसी परिस्थिति में कोई दूसरी ध्वनि न आए। इस प्रकार के वितरण को परिपूरक वितरण कहा जाता है। परिपूरक वितरण में आने वाली ध्वनियां संस्वन होती हैं। अगर हम एक बार बोलें 'चल' दूसरी बार फिर बोलें 'चल'। 'च' और 'ल' के उच्चारण स्थान में अल्प भेद आने पर भी अर्थ में अन्तर नहीं आता। इस प्रकार का वितरण पूरक है।

3. मुक्त वितरण – इस प्रकार के वितरण में जिस परिस्थिति में एक ध्वनि आती है उसी प्रकार की परिस्थिति में दूसरी ध्वनि भी आ जाती है लेकिन अर्थ भेद नहीं कर पाती, जैसे 'दीवार' और 'दीवाल' शब्दों में 'र' और 'ल' अर्थ भेद नहीं कर पा रहे।

4. संदिग्ध युग्म – संकलित सामग्री में से हमें इस प्रकार के निम्नतम युग्म प्राप्त हो सकते हैं जिनकी उस ध्वनि के बारे में यह संदेह होता है कि वह स्वनिम है या नहीं, जो निम्नतम युग्म बनने का कारण होती है। जैसे : 'दीवार' और 'दीवाल' निम्नतम युग्म हैं। यहां 'र' और 'ल' को ले कर संदेह है कि वे स्वतंत्र स्वनिम हैं या नहीं।

मर्ष विज्ञान

शब्द : सार्थक ध्वनिसमूह को शब्द कहा जाता है। शब्द मूल रूप होते हैं। शब्द के तीन भेद माने जाते हैं : (क) रूढ़ – ऐसे शब्द जिनमें मूल रूप और प्रत्यय को स्पष्ट रूप से अलग नहीं किया जा सकता रूढ़ कहलाते हैं। जैसे : रत्न, नूपुर, स्थूल आदि। (ख) यौगिक – जो प्रकृति और प्रत्यय के योग से बने हैं, जैसे : धनवान, भौतिक, कर्ता आदि। (ग) योगरूढ़ – जो शब्द यौगिक होते हुए भी किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं, वे योगरूढ़ कहलाते हैं, जैसे : पंकज आदि।

पद : शब्द को वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बना लेने पर उसे पद कहा जाता है। जैसे : 'वह जाता है।' वाक्य में 'जा' मूल रूप के साथ 'ता' प्रत्यय लगा कर 'जाता' बनाया गया है। यहां 'जाता' पद है।

मर्षिम : देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार मर्षिम कुछ मर्षों का भावानयन है। यह लघुतम अर्थयुक्त इकाई है, किन्तु यह अर्थ इकाई नहीं है। इसका सम्बन्ध भाषा के रूप पक्ष से भी है और अर्थ पक्ष से भी। अगर हम 'रसोईघर' शब्द के टुकड़े करें तो पहले हमें दो टुकड़े प्राप्त होंगे – 'रसोई' और 'घर'। ये दोनों टुकड़े सार्थक हैं। अगर इन के और टुकड़े किए जाएँ तो हमें वर्ण प्राप्त होंगे या निरर्थक टुकड़े। 'रसोई' और 'घर' दोनों मर्षिम हैं। मर्षिम को { } के बीच लिखा जाता है। जैसे {रसोई}, {घर}।

मर्षिम के भेद – मर्षिम को तीन दृष्टियों से देखा जाता है। (क) रचना की दृष्टि से (ख) अर्थ की दृष्टि से। (ग) खंडीकरण की दृष्टि से।

(क) रचना की दृष्टि से मर्षिम चार प्रकार के होते हैं :

1. **मुक्त मर्षिम** : जो किसी अन्य मर्षिम से संयुक्त हुए बिना वाक्य में या वाक्य के रूप में प्रयुक्त हो सकने में समर्थ हों उन्हें मुक्त मर्षिम कहा जाता है। जैसे {चल}, {कर}, {सुन्दर} आदि।

2. **बद्ध मर्षिम** – जो मर्षिम किसी अन्य मर्षिम से संयुक्त हुए बिना प्रयुक्त नहीं हो सकते हैं वे बद्ध मर्षिम कहलाते हैं, जैसे {-ता}, {त्व}, {सु-} आदि। बद्ध मर्षिम के दो मुख्य भेद हैं – (I) शब्द साधक मर्षिम (Derivative) – ये धातु या प्रातिपदिक से जुड़कर नए शब्द बनाते हैं, जैसे 'कृ' धातु के साथ जुड़ कर 'कारक' बनता है। (2.) रूपसाधक मर्षिम (Inflected) – जो प्रत्यय धातु या प्रातिपदिक के साथ जुड़कर कारक, लिंग, वचन, काल आदि बनाते हैं, वे रूपसाधक मर्षिम हैं। जैसे 'ई'। लड़क+ई = लड़की।

3. अर्धबद्ध मर्षिम – ये मर्षिम मुक्त और बद्ध दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं, जैसे {गृह} को स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है और {स्वामी} के साथ जोड़कर भी – गृहस्वामी।

4. मिश्र मर्षिम – ऐसे मर्षिमों में मुक्त और बद्ध दोनों रूप मिले होते हैं, जैसे बालक+स = बालक।

(ख) अर्थ की दृष्टि से मर्षिम के दो भेद हैं :

1. अर्थदर्शी मर्षिम (अर्थ तत्व) – ये मर्षिम अर्थ का बोध कराते हैं और मुक्त मर्षिम के रूप में मिलते हैं, जैसे : {पढ़}, {चल} आदि।

2. सम्बन्धदर्शी मर्षिम (सम्बन्ध तत्व) – ये अर्थबोधक न होकर संज्ञा, क्रिया आदि में सम्बन्ध का बोध कराते हैं अर्थात् ये कारक, लिंग, वचन, काल और पुरुष का बोध कराते हैं और बद्ध मर्षिम के रूप में प्राप्त होते हैं। ये नौ प्रकार के हैं :

I. शून्य तत्व – शून्य तत्व से अभिप्राय यह है कि शब्द अपने मूल रूप में रहते हुए व्याकरण के सम्बन्ध को बताते हैं। जैसे 'वह उठ गया' वाक्य में 'उठ' अपने मूल रूप में है।

II. स्वतन्त्र शब्द – स्वतन्त्र शब्द भी सम्बन्ध तत्व का काम करते हैं, जैसे कारक चिह्न To, from, in आदि। हिन्दी में ने, को, से आदि।

III. पद क्रम – पदों का निश्चित क्रम भी संबंध तत्व का काम करता है, जैसे Ram killed Ravan और Ravana killed Ram. राम आया-आया राम, राम गया – गयाराम (दलबदलू)।

IV. द्विरुक्ति – शब्द के अंश की आवृत्ति सम्बन्ध तत्व का कार्य करती है, जैसे पठ > पपाठ (पढ़ा)। खटखटाना आदि।

V. आगम – शब्द के आदि, मध्य या अंत में सम्बन्ध तत्व जुड़ जाते हैं, जैसे 'शील' से पूर्व सु= सुशील।

VI. आंतरिक परिवर्तन – शब्दों के भीतर परिवर्तन होने से अर्थ में अन्तर आ जाता है, जैसे गुण > गौण। अंग्रेजी में Sing > Sang

VII. आदेश – आदेश का अर्थ है परिवर्तन। इसमें मूल शब्द के बदले दूसरे शब्द का प्रयोग होता है। हिन्दी में जा > गया। 'या' धातु से 'जा' बना है। जबकि 'गया' गम, धातु से बना है। इस प्रकार यह धातु का परिवर्तन है।

VIII. न्यूनत्व – इसमें लोप कार्य होता है अर्थात् कुछ ध्वनियों को निकाल दिया जाता है, जैसे दा+सन् = दिदासति के स्थान पर दित्सति (देना चाहता है)।

IX. स्वराघात और लय – स्वराघात, लय और तान भी सम्बन्धतत्व का कार्य करते हैं। जैसे :

(1) वह चला (2) मशीन चला। दूसरे वाक्य के 'चला' के 'आ' पर बल देने पर अर्थ बदल जाता है।

(ग) खंडीकरण की दृष्टि से मर्षिम दो प्रकार के हैं -

I. खंड मर्षिम - इस प्रकार के मर्षिमों को पृथक किया जा सकता है। जैसे सुन्दरता = सुन्दर+ता।

II. अखंड मर्षिम - ऐसे मर्षिम जिन्हें पृथक न किया जा सके। बलाघात, सुर आदि अखंड मर्षिम हैं।

संमर्ष - जो मर्ष किसी मर्षिम के सदस्य होते हैं, वे उस मर्षिम के संमर्ष कहे जाते हैं। संमर्ष को /के बीच लिखा जाता है।

धातु - किसी शब्द का मूल अर्थवाही तत्व धातु कहलाता है, जैसे चल, नमक आदि।

प्रातिपादिक - देवी शंकर द्विवेदी के अनुसार धातु, धातु-समूह अथवा धातु-प्रत्यय के ऐसे अनुक्रम को प्रातिपादिक कहा जाता है जिसमें प्रत्ययों का योग होना हो। जैसे 'सुन्दर' शब्द में 'ता' का योग संभव है, इसलिए 'सुन्दर' शब्द प्रातिपादिक है।

प्रत्यय - धातु या प्रातिपादिक में जुड़ने वाले गौण तत्व प्रत्यय कहलाते हैं। धातु से पहले जुड़ने वाले पूर्व प्रत्यय कहलाते हैं। इनके लिए उपसर्ग शब्द का भी प्रयोग होता है। जैसे 'वि-'। शिष्ट के पूर्व जोड़ने पर 'विशिष्ट' शब्द बन जाता है। धातु या प्रातिपादिक के अन्त में जुड़ने वाले प्रत्यय परप्रत्यय कहलाते हैं। जैसे-ता। चल के साथ जुड़ कर शब्द बनता है 'चलता'। धातु या प्रातिपादिक के मध्य जुड़ने वाले प्रत्यय अन्तप्रत्यय कहलाते हैं। जैसे 'इ', 'आ' आदि। कतब के मध्य 'इ' और 'आ' जुड़ने पर शब्द बनेगा 'किताब'।

व्याकरणिक कोटियां

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार 'कई वाग्भागों के अन्तर्गत आने वाले प्रातिपादिकों को प्रयोग का सामर्थ्य अर्जित करने के लिए कुछ वर्गबद्ध बंधन स्वीकार करने पड़ते हैं। ये बंधन व्याकरणिक कोटियां हैं।' व्याकरणिक कोटियां प्रत्येक भाषा में होती हैं। हिन्दी की व्याकरणिक कोटियां निम्न हैं :

1. लिंग – यह व्याकरणिक कोटि सजाओं में व्यापक रूप से पाई जाती है। लिंग दो प्रकार के हैं— प्राकृतिक और व्याकरणिक। भाषा के सन्दर्भ में व्याकरणिक लिंग ही प्रमुख हैं। नर-मादा के रूप में प्राकृतिक लिंग नहीं। कुछ भाषाओं में एक दर्जन से अधिक लिंग हैं। हिन्दी में दो लिंग हैं – स्त्रीलिंग और पुल्लिंग। लिंग का भाव प्रकट करने के लिए कुछ शब्दों में मर्षिम का योग करना पड़ता है। जिस व्याकरणिक कोटि में यह प्रवृत्ति मिलती है, उसे रूपायित कोटि कहते हैं। हिन्दी में स्त्रीलिंग का भाव व्यक्त करने के लिए प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है। जैसे /-ई/ या /-आ/ आदि का : /लड़क-/+/-ई/= लड़की, /बाल-/+/-आ/= बाला। अंग्रेजी में स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है, जैसे He, Her, He goat, She goat.

अगर लिंग का भाव व्यक्त करने के लिए मर्षिम का योग न होना हो तो ऐसी व्याकरणिक कोटि को चयनात्मक कोटि कहा जाता है। जैसे पुल्लिंग शब्द – कोट, ग्रंथ, कान, आदि। स्त्रीलिंग शब्द – चोट, पुस्तक, टाँग, नाक आदि।

वाक्य व्यवहार में हिन्दी का लिंग कुछ विशेषणों और क्रियाओं को प्रभावित करता है, जैसे 'अच्छा लड़का गया'। 'अच्छी लड़की गई'।

2. वचन – इस व्याकरणिक कोटि का सम्बन्ध संख्या से है। हिन्दी और अंग्रेजी में दो वचन मिलते हैं – एकवचन तथा बहुवचन। हिन्दी में बहुवचन बनाने के लिए, 'एँ, इयाँ आदि प्रत्ययों का योग होता है, जैसे –

एकवचन	बहुवचन
लड़के	लड़कियाँ
लता	लताएँ

3. पुरुष – यह सर्वनाम नामक वाग्भाग में मिलने वाली कोटि है। पुरुष तीन हैं – उत्तम, मध्यम और अन्य। पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में परिवर्तन होता है, जैसे उत्तम पुरुष में – मैं जाता हूँ। मध्यम पुरुष में – तुम जाते हो।

हिन्दी में उत्तम पुरुष 'हम' का प्रयोग वक्ता अकेले अपने लिए भी करता है। किन्तु यह एकवचन नहीं है। गठन की दृष्टि से यह बहुवचन है।

मध्यम पुरुष 'तुम' और 'तू' का प्रयोग एकवचन और बहुवचन दोनों रूपों में होता है। गठन की दृष्टि से 'तुम' बहुवचन है। 'तू' का प्रयोग असम्मान में होता है और वह भी कभी-कभी, कहीं-कहीं।

अन्य पुरुष एकवचन 'वह', 'वो' का प्रयोग असम्मान में होता है। बहुवचन 'आप' का प्रयोग शिष्टाचार में उस व्यक्ति के लिए होता है जिससे बात की जा रही हो। किन्तु व्याकरणिक दृष्टि से यह मध्यम पुरुष न होकर अन्य पुरुष हैं।

4. कारक – संस्कृत में आठ कारक थे। हिन्दी में वाक्य के स्तर पर कुछ वाक्यों के अंशों का संबंध भिन्न-भिन्न प्रकार से क्रिया से जोड़ कर कारकों की कल्पना की जा सकती है। मर्षवैज्ञानिक स्तर पर गठन की दृष्टि से हिन्दी में तीन ही कारक हैं। जैसे –

	एकवचन	बहुवचन
सरल कारक	लड़का	लड़के
तिर्यक कारक	लड़के	लड़कों
सम्बोधन	लड़के	लड़को

उदाहरण : लड़का गया, लड़के गए

लड़के ने ढेला फेंका, लड़कों ने ढेले फेंके।

ओ लड़के, ओ लड़कों।

5. काल – यह क्रियाओं में मिलने वाली कोटि है। हिन्दी में काल तीन प्रकार के हैं – भूत, वर्तमान और भविष्य। काल को अभिव्यक्त करने के लिए हिन्दी के क्रियारूपों का रूप कम ही बदलता है। भविष्य में {-ग} मर्षिम का प्रयोग होता है जैसे : वह जाएगा।

प्रेरणार्थक रूप {-आ} या {-वा} लगा कर बनाए जाते हैं – करना > कराना, करवाना।

6. पक्ष – क्रियाओं में मिलने वाली यह कोटि हिन्दी में नहीं है। इसमें कार्य की पूर्णता-अपूर्णता और उसकी बारम्बारता पर बल होता है। रूसी भाषा में दो पक्ष मिलते हैं :

	पूर्ण	अपूर्ण
देना	दात्य	दवात्य

यहां "दात्य" शब्द के अपूर्ण पक्ष में प्रत्यय {-व-} मध्य में आ गया है।

7. वाच्य – यह व्याकरणिक कोटि क्रियाओं में मिलती है। इससे यह पता चलता है कि वाक्य में कर्ता ने वस्तुतः कोई क्रिया की है या वह उससे प्रभावित हुआ है। देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार वाच्य अधिकतर दो होते हैं –

- | | | | |
|-----|------------|-----|-----------|
| (क) | कर्तृवाच्य | (ख) | कर्मवाच्य |
| | काटना | | कटना |

समीपी संघटक

ऐसे संघटक जो किसी समग्र संघटन अथवा उसके अन्तर्भूत लघु संघटनों की रचना के लिए उत्तरदायी होते हैं, समीपी संघटक कहलाते हैं। समीपी संघटकों में परस्पर अधिक निकट का सम्बन्ध होता है, जो अर्थ की स्वाभाविकता सुरक्षित रखते हैं। उदाहरण के रूप में हम एक वाक्य लेते हैं –

मैं हिन्दी विभाग में जाती हूँ।

यह सम्पूर्ण वाक्य एक संघटन है इसके दो समीपी संघटक हैं – 'मैं' तथा 'हिन्दी विभाग में जाती हूँ'। 'हिन्दी विभाग में जाती हूँ' के पुनः दो संघटक हैं – 'हिन्दी-विभाग' और 'मैं'। 'हिन्दी विभाग' के पुनः दो संघटक हैं – 'हिन्दी' और 'विभाग'। 'जाती हूँ' के दो संघटक हैं 'जाती' और 'हूँ'। इसे निम्न रूप में दिखाया जा सकता है :

मैं	हिन्दी	विभाग	में	जाती	हूँ
	हिन्दी विभाग		में	जाती	हूँ
	हिन्दी विभाग		में	जाती हूँ	
	हिन्दी विभाग में				
	हिन्दी विभाग में जाती हूँ				
मैं हिन्दी विभाग में जाती हूँ					

उपर्युक्त उदाहरण में प्रत्येक संघटन के दो संघटक हैं। किसी-किसी संघटन में कई संघटक हो सकते हैं। जैसे –

मैं	हिन्दी विभाग	पंजाबी-विभाग	और	डोगरी विभाग	में	जाती हूँ

संशय – देवीशंकर द्विवेदी के अनुसार कभी-कभी किसी उच्चार के अर्थ के संबंध में संशय होने लगता है। समीपी घटकों के विश्लेषण से इस संशय के कारण पर प्रकाश पड़ता है और यह पता चलता है कि क्या भाषा स्वयं ही इस प्रकार के संशय के लिए उत्तरदायी है : उदाहरण के लिए : कच्चे केले और बेर। इस उच्चार के दो अर्थ हो सकते हैं। दोनों अर्थों के अनुसार समीपीघटक निम्न प्रकार से होंगे –

कच्चे	केले	और	बेर
	केले	और	बेर
कच्चे	केले	और	बेर

1. अर्थ - केले और कच्चे बेर

कच्चे	केले	और	बेर
कच्चे	केले		
कच्चे	केले	और	बेर

2. अर्थ - केले और कच्चे बेर

कई बार वाक्यों में साम्य होता है लेकिन उनके समीपी घटकों का विश्लेषण संदिग्ध नहीं होता। इसके लिए रूपायन उत्तरदायी है। जैसे -

- लम्बे चिकने मोटे पत्तियों वाले पेड़।
- लम्बे चिकने मोटे पत्तियों वाले पेड़।
- लम्बे चिकने मोटी पत्तियों वाले पेड़।
- लम्बे चिकनी मोटे पत्तियों वाले पेड़।
- लम्बी चिकनी मोटी पत्तियों वाले पेड़।

समीपी घटक तीन प्रकार के होते हैं -

1. अविच्छिन्न (Continuous) : जैसे मैं स्कूल जाती हूँ।
2. विच्छिन्न (Discontinuous) : जैसे Is he going?
3. समकालिक (Simultaneous) - अनुतान समकालिक समीपी संघटक है।

क्योंकि यह साथ-साथ चलती है। जैसे –

वह दिल्ली गया! वह दिल्ली गया?

चिह्नक – किसी संघटन में कुछ घटक ऐसे भी हो सकते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से किसी अर्थ को वहन नहीं करते। वे केवल एक संघटक का दूसरे संघटक के साथ संबंध बताते हैं। ऐसे घटक चिह्नक कहलाते हैं। उदाहरण के रूप में :

अजय, विजय, मोहन और सुशीला स्कूल जाते हैं।

उपर्युक्त संघटन में 'और' चिह्नक है जो यह बताता है कि इसके पहले के और इसके बाद के संघटक किसी संघटन के समीपी संघटक हैं।

वाक्य-परिभाषा

वाक्य भाषा की वह सहज इकाई है जिसमें एक या अधिक शब्द (पद) होते हैं तथा जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हों या अपूर्ण, व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है; साथ ही उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम-से-कम एक समापिका क्रिया अवश्य होती है। जैसे :

प्रश्न – आप जाएंगे?

उत्तर – हां। 'हां' एक शब्द है जो वाक्य का कार्य भी कर रहा है। इसमें क्रिया नहीं है, परन्तु क्रिया की कल्पना किए बिना इसे समझा नहीं जा सकता। क्रिया या प्रत्यक्ष होगी या उसका अनुमान लगाया जाएगा।

वाक्य के भेद

वाक्य पांच प्रकार के हैं :

1. रचना-मूलक
2. आकृति-मूलक
3. अर्थ-मूलक
4. क्रिया-मूलक
5. शैली-मूलक

1. रचना मूलक (रचना की दृष्टि से)

रचना की दृष्टि से वाक्य तीन प्रकार के हैं :

- (क) सरल (सामान्य) वाक्य
- (ख) संयुक्त वाक्य
- (ग) मिश्र वाक्य

(क) **सरल वाक्य** – इसमें एक उद्देश्य और एक विधेय होता है अर्थात् एक संज्ञा (सर्वनाम) और एक क्रिया। जैसे – वह पुस्तक पढ़ता है। हिन्दी आदि कुछ भाषाओं में सरल वाक्य पांच प्रकार के हैं –

- (i) अकर्मकीय – जिनमें कर्म नहीं होता। जैसे : राम खाता है।
- (ii) एककर्मकीय – जिनमें एक कर्म होता है – वह आम खाता है।
- (iii) द्विकर्मकीय – 1. राम शाम को डंडे से मारता है।
2. मुकुल अलका को पत्र लिखता है।
- (iv) कर्तृपूरकीय – आम मीठे हैं।
- (v) कर्मपूरकीय – राम शाम को मूर्ख बनाता है।

(ख) **संयुक्त वाक्य** – ऐसा वाक्य संयुक्त वाक्य कहलाता है, जिसमें आंतरिक संरचना के स्तर पर दो या अधिक स्वतंत्र उपवाक्य होते हैं और उनमें परस्पर समानाधिकरण संबंध होता है, अर्थात् वे अर्थ की दृष्टि से परस्पर आश्रित नहीं होते। संयुक्त वाक्यों का वर्गीकरण अर्थ और संरचना की दृष्टि से किया जा सकता है।

I. अर्थगत वर्गीकरण

डॉ. सूरजभान सिंह के अनुसार संयुक्त वाक्य के उपवाक्य अर्थ की दृष्टि से परस्पर आश्रित नहीं होते लेकिन अर्थ की दृष्टि से हमेशा उनका स्तर समान नहीं होता। अगर केन्द्रीय अर्थ को भंग किए बिना उनमें क्रम विपर्यय की क्षमता हो तो उन्हें समस्तरीय कहा जा सकता है जैसे :

रात सुनसान थी और चारों ओर अंधेरा था।

क्रम विपर्यय – चारों और अंधेरा था और रात सुनसान थी।

इसके विपरीत प्रसंग-सूत्र से जुड़े होने के कारण कुछ संयुक्त वाक्यों में स्थान-विपर्यय नहीं हो सकता, जैसे –

चिड़ियाँ को गोली लगी और वह नीचे आ गिरी।

II. उपवाक्यों में परस्पर संबंधों के आधार पर संयुक्त वाक्यों के निम्नलिखित भेद संभव हैं:

(क) संयोजक संबंध – जब उपवाक्य दो या अधिक घटनाओं, स्थितियों, कार्यव्यापारों के संग्रह या संयोजन का भाव व्यक्त करते हैं तो उनके बीच संयोजन संबंध माना जाता है। इस संबंध को व्यक्त करने के लिए – और (तथा, एवं), फिर, ही नहीं ... बल्कि समुच्चयबोधक अव्यय प्रयुक्त होते हैं। जैसे –

(I) – वह थोड़ी देर रुकी, फिर चल दी।

(II) – उसने गाली ही नहीं दी बल्कि पीटा भी।

(ख) विभाजक संबंध – जब उपवाक्य दो या अधिक घटनाओं, स्थितियों या कार्यव्यापारों में से किसी एक के ग्रहण या दोनों के त्याग की सूचना देते हैं तब उनके बीच विभाजक संबंध माना जाता है। प्रमुख विभाजक समुच्चयबोधक अव्यय हैं – या (अथवा) य ...या, न ...न, नहीं तो (अन्यथा), चाहे ... चाहे, न कि, कि (या)। उदाहरण :

(I) मैं अपना वेतन मांग रहा हूँ न कि भीख।

(II) तुम जाते हो कि (या) नहीं।

(III) न वह मुझे जानता है, न उसे। (दोनों का त्याग)

(ग) विरोधवाची संबंध – जब उपवाक्य दो घटनाओं, स्थितियों या कार्यव्यापारों के बीच विरोध या विरोधाभास की सूचना दें तब उनके बीच विरोधवाची संबंध होता है। इनमें स्थान विपर्यय संभव नहीं है। प्रमुख विरोधवाची समुच्चयबोधक अव्यय हैं : लेकिन (किंतु; परन्तु, मगर, पर) बल्कि, प्रत्युत। उदाहरण–

(क) उसने उसके पैसे नहीं लौटाए बल्कि उससे कुछ पैसे और ले लिए।

(ख) वह उठा लेकिन लोगों ने उसे बिठा दिया।

(घ) **परिणामवाची संबंध** – जब उपवाक्य कार्य-कारण का बोध कराएँ तब उनके बीच परिणामवाची संबंध माना जाता है। प्रमुख परिणामवाची समुच्चयबोधक अव्यय हैं – इसलिए, अतः, अतएव, सो। उदाहरण—
वह बीमार है इसलिए स्कूल नहीं जा सकता।

III. संरचनागत वर्गीकरण

संरचना की दृष्टि से संयुक्त वाक्यों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :

(I) **पूर्णांग संयुक्त वाक्य** – ऐसे वाक्यों में संयोजन की प्रक्रिया कार्य करती है। उपवाक्यों में किसी प्रकार का विकार नहीं होता उनके बीच केवल समुच्चयबोधक अव्यय होता है :

(क) जल्दी चले जाओ नहीं तो वह यहीं आ जाएगा।

(II) **अल्पांग संयुक्त वाक्य** – इस वर्ग के उपवाक्य के दूसरे वाक्य से समरूप या समानधर्मा अंश का लोप हो जाता है। यह लुप्त अंश प्रायः क्रिया पदबंध होता है। लोप के साथ इस वर्ग में संयोजन भी होता है। कहीं-कहीं 'लेकिन' वर्ग के अव्यय का लोप भी होता है। जैसे –

I) मां सो रही थी और बच्ची भी (सो रही थी)।

II) मैं आपको जानता हूँ (लेकिन) आप के लड़के को नहीं (जानता)।

III) आप कल आए थे या परसों (आए थे)?

(III) **संकुचित संयुक्त वाक्य** – इस वर्ग के वाक्यों में संयोजन और लोप के साथ स्थानांतरण की प्रक्रिया होती है। दूसरे उपवाक्य का असमान अंश प्रथम वाक्य में स्थानांतरित हो जाता है। उदाहरण –

लोहा और सोना धातुएं हैं (संयुक्त कर्ता पदबंध)

ठेकेदार ने सभी मकान और पेड़ तोड़ डाले (संयुक्त कर्म पदबंध)

उल्लू दिन को सोता है और रात को जागता है। (संयुक्त विधेय)

दिल्ली और लंदन क्रमशः भारत और इंग्लैंड की राजधानियां हैं।

(समानांतरसंयुक्त वाक्य)

नोट – अल्पांग वाक्य का कोई भी अंश संयुक्त पदबंध का निर्माण करने की क्षमता नहीं रखता। 'उल्लू दिन को सोता है और रात को जागता है' में संयुक्त विधेय है। साथ ही इसमें क्रिया पदबंध का लोप न हो कर कर्ता पदबंध का लोप है।

कामता प्रसाद गुरु के अनुसार जिस वाक्य में एक उद्देश्य के अनेक विधेय हों या अनेक उद्देश्यों का एक विधेय हो या अनेक उद्देश्यों के अनेक विधेय हों उसी को संकुचित संयुक्त वाक्य मानना उचित है।

(ग) मिश्र वाक्य – मिश्र वाक्य में कम-से-कम दो उपवाक्य होते हैं जिनमें से एक मुख्य/स्वतंत्र उपवाक्य होता है जिसमें मुख्य कथन होता है, दूसरा गौण/आश्रित उपवाक्य होता है जो कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों (जो, कि, ताकि आदि) द्वारा मुख्य उपवाक्य से जुड़ा होता है। जैसे –

बाहर एक व्यक्ति खड़ा है जो पतंगे बेच रहा है।

प्रकार्य की दृष्टि से आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं :

(I) संज्ञा उपवाक्य – जो वाक्य में संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हैं उन्हें संज्ञा उपवाक्य कहते हैं। प्रायः इनके आरंभ में 'कि' का प्रयोग होता है लेकिन कुछ स्थितियों में इसका लोप भी हो सकता है और कुछ में प्रतिबंध भी, जैसे –

I) उसने कहा (कि) गाड़ी छूट गई ('कि' का ऐच्छिक लोप)

II) आप यहां के राजा हैं यह कौन नहीं जानता। ('कि' पर प्रतिबंध)

(II) विशेषण उपवाक्य – जो उपवाक्य संज्ञा की विशेषता बताते हैं उन्हें विशेषण उपवाक्य कहा जाता है। इनके प्रारंभ में प्रायः संबंधवाचक सर्वनाम 'जो' या इसके विकारी रूप 'जिस', 'जिन' आदि का प्रयोग होता है। जैसे –

I) जो पैसे आपने मुझे दिए थे वे खर्च हो गए।

(III) क्रियाविशेषण उपवाक्य – जो उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बताते हैं उन्हें क्रियाविशेषण उपवाक्य कहते हैं। कभी-कभी ये विशेषण या क्रियाविशेषण की विशेषता बताते हैं, जैसे –

I) जब मैं कलकत्ते में था तो खुद खाना बनाता था।

('तब' क्रिया की विशेषता)

II) वह इतना कमजोर है कि चल भी नहीं सकता।

(‘न चल सकने योग्य’ विशेषण की विशेषता)

III) वह इतनी जल्दी बोलता है कि कुछ समझ नहीं आता

(‘कुछ समझ न आने तक’ क्रिया विशेषण की विशेषता)

2. आकृतिमूलक वर्गीकरण

सम्बन्धतत्त्व और अर्थतत्त्व के आधार पर वाक्य चार प्रकार के हैं –

(क) **अयोगात्मक** – ऐसे वाक्यों में संबंधतत्त्व और अर्थतत्त्व अलग-अलग रहते हैं। चीनी भाषा अयोगात्मक है। उदाहरण :

I) ता जेन (बड़ा आदमी)

जेन ता (आदमी बड़ा है।)

II) वो ता नी (मैं तुझे मारता हूँ)

नी ता वो (तू मुझे मारता है)

(ख) **श्लिष्ट योगात्मक** – ऐसे वाक्यों के शब्दों में संबंध तत्त्व और अर्थ तत्त्व को जोड़ने के कारण अर्थतत्त्व वाले भाग में कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है। सम्बन्धतत्त्व की झलक अलग मालूम पड़ती है, जैसे : वृक्षात् पत्रम् अपतत् (पेड़ से पत्ता गिरता है।) कतल > कातिल।

(ग) **अश्लिष्ट योगात्मक** – ऐसे वाक्यों के शब्दों में प्रकृति और प्रत्यय घनिष्ठता से मिले हुए नहीं होते उन्हें अलग-अलग देखा जा सकता है। जैसे ‘सुन्दरता’ में सुन्दर+ता

(घ) **प्रश्लिष्ट योगात्मक** – ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय पदों को अलग करना कठिन होता है, प्रायः पूरा वाक्य एक शब्द बन जाता है। अमरीका की चेरीकी भाषा में ‘नाधोलिनिन’ का अर्थ है ‘हमारे पास नाव लाओ’। इसमें नातेन- लाओ, अमोखोल-नाव और निन = हम, शब्द हैं जिन्हें जोड़ कर यह वाक्य बनाया गया है।

3. **अर्थमूलक वर्गीकरण** – इस आधार पर वाक्य आठ प्रकार के हैं –

1. विधि वाक्य राम जाता है।

2. निषेध वाक्य राम नहीं जाता।

3.	प्रश्न-वाक्य	क्या राम जाता है?
4.	अनुज्ञा-वाक्य	राम! तुम जाओ!
5.	सन्देह-वाक्य	राम जाता होगा।
6.	इच्छार्थक वाक्य	तुम सौ साल जियो।
7.	संकेतार्थक वाक्य	यदि राम तेज दौड़ता तो प्रथम आ जाता।
8.	विस्मयार्थक वाक्य	देखो कितना बड़ा सांप है।

1. क्रियामूलक वर्गीकरण – इस आधार पर वाक्यों के दो भेद होते हैं –

(क) **क्रियायुक्त वाक्य** – लगभग सभी भाषाओं के वाक्यों में एक क्रिया रहती है। वाच्य के आधार पर क्रिया युक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं – कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाव वाच्य। कर्तृवाच्य में कर्ता मुख्य होता है, जैसे : फल राम द्वारा खाया जाता है। भाववाच्य में क्रिया मुख्य होती है, कर्म नहीं होता जैसे : 'फल गिरता है।'

(ख) **क्रियाहीन वाक्य** – प्रचलन के आधार पर कई भाषाओं में क्रिया के बिना भी वाक्य होते हैं जैसे : इदं न मम गृहम्। प्रश्न वाक्य भी बिना क्रिया के हो सकते हैं, जैसे : कस्मात् त्वम्? (कहाँ से?)

मुहावरों में क्रियाहीन वाक्यों का प्रयोग होता है, जैसे – यथा राजा तथा प्रजा। विज्ञापनों, समाचार पत्र आदि के शीर्षकों में भी क्रिया नहीं होती जैसे – नक्कालों से सावधान।

2. शैली-मूलक – शैली के आधार पर तीन प्रकार के वाक्य होते हैं-

(क) **शिथिल वाक्य** – ऐसे वाक्य अलंकृत या मुहावरेदार नहीं होते। वक्ता या लेखक मनमाने ढंग से बात करता है, जैसे : एक थी रानी कुन्ती, उसके पांच पुत्र, एक का नाम युधिष्ठिर, एक का नाम भीम, एक का नाम कुछ और, एक का नाम मैं भूल गया।' यह कथावाचकों की शैली है।

(ख) **समीकृत वाक्य** – ऐसे वाक्यों में संतुलन और संगति का ध्यान रखा जाता है। जैसे – कहां हंस कहां बगुला, कहां राजा, कहां रंक! कहां शेर कहां सुअर! समीकृत वाक्य सन्तुलन आदि के कारण लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो जाते हैं।

(ग) आवर्तक वाक्य – ऐसे वाक्यों में कथनीय वस्तु अंत में दी जाती है। 'यदि', 'अगर' जैसे शब्द लगाकर वाक्यों को लम्बा किया जाता है। जैसे – यदि सुख चाहिए, यदि शांति चाहिए, यदि कीर्ति चाहिए, यदि अमरता चाहिए तो विद्याध्ययन में मन लगाओ।

सहायक पुस्तकें

1. भोलानाथ तिवारी – भाषाविज्ञान
2. सूरजभान सिंह – हिन्दी भाषा
3. कपिलदेव द्विवेदी – भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र
